विकेन्द्रित

(उपन्यास)

मूल लेखक
नरेन्द्रपाल सिंह
अनुवादक
त्रिलोक दीप

प्रकाशक
प्रतिमान प्रकाशन
नई दिल्ली-110064

हिन्दी अकादमी दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित।

प्रथम संस्करण : 1990
आवरण : अमित चक्रवर्ती
मूल्य : पैंतीस रुपये
प्रकाशक : प्रतिमान प्रकाशन
यू-सी/13, ऊषा पार्क, जेल रोड
हरी नगर, नयी दिल्ली-110064
मुद्रक : जालान प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

VIKENDRIT (Novel) by Narenderpal Singh
Translated by Trilok Deep. Pr. 35.00

प्रलय के सूत्रधार
और
अकाल के भी सूत्रधार
को

दो शब्द

नरेन्द्रपाल सिंह का विकेन्द्रित अंतरिक्ष युग का उपन्यास है। भविष्य का पैगंबर, एक भविष्य का सृजक और एक का हत्यारा, प्रलय का सूत्रधार और अकाल का सूत्रधार भी। विकेन्द्रीय या विमुख और केंद्रमुखी या कुदरती ताकत का घोल है। एक तो है आकर्षण-शक्ति की खींच और एक है विकेन्द्रीय शक्ति का आकर्षण। यह विकेन्द्रीय शक्ति का ही आकर्षण है जो कला, यत्नों या मानवीय कला को अन्तरिक्ष मे बस सीधी लीक मे और बिना रुके उड़े और फेंके जाने से बचाती है। यह उपन्यास एक यंत्र है जो भिन्न-भिन्न द्रव्यों को तेज चाल से एक-दूसरे से अलग करता है।

यह एक विद्रुपथ है जो शुद्ध केंद्र की क्रमवार स्थितियों के साथ पदचिह्न करता है। जगह-जगह पर विकेन्द्रित केन्द्रमुखियों का जामा पहनता है।

इस उपन्यास मे हमे पात्रों के नाम नही मालूम। आधुनिक काल मे नामों की क्या जरूरत? नामो के साथ निजीपन और व्यक्तित्व उभरता है और हम ये दो वस्तुएं समाज मे से खारिज करना चाहते हैं (?) अराजकता। नरेन्द्रपाल सिंह का कहना है कि उनका अगला उपन्यास रोबोट (यन्त्र मनुष्य) होगा,·पात्र, लेखक, लेखनी सब कुछ रोबोट में।

'विकेन्द्रित, क्रान्तिकारी दृष्टिकोण और चिंतन मांगता है। सब चौपायों और दोपायों में एक मनुष्य ही ऐसा दोपाया है जो मुंह की सुंदरता पर मरता है · बुद्धिजीवी को क्या प्यार करना है? अगर उसे सुंदरता मिलती है, तो वह ज्ञान के पीछे है, और अगर प्यार और सूझ झोली में है, तो कहता है कुछ देखने और पहचानने के लिए भी हो···प्यार और इश्क

का रोना सब झूठ है। शून्यवादी तर्कवाद। आज इन शब्दों का कोई भाव, कोई मूल्य नहीं रहा। हमारे शब्दों का आधार बदल गया है। भाषा की उन्नति अब अनिवार्य सीमित दायरे मे है'''सभी धर्मस्थान भीतर से काले होने चाहिए, कालिख मे ही श्रद्धा का गहनतम अहसास प्रज्वलित होता है। कालिख ही अरूप, अनूप, अभेद और अलेख है।

विकेन्द्रित, प्यार की अर्थी है और यह अर्थी मोहब्बत की विश्व-अर्थी का चिह्न है। बुद्धिजीवियों को निमंत्रण है 'रामनाम सत्य' का उच्चारण करते हुए वे इस अर्थी के पीछे हो लें।

विकेन्द्रित एक प्रतिभाशाली कृति है—एक कलाकार व्यक्ति की अनूठी और अनोखी देन। यह भारतीय गल्प साहित्य मे बीससाला भविष्य की मंजिल है।

नरेन्द्रपाल सिंह—'सर्वरंगी, बहुरंगी, बहुरूपी और बहुमुखी' प्रतिभा संपन्न। राजसी ठाठ, लेकिन फकीराना अंदाज। ऊंचा सैनिक अधिकारी; बाहर कुछ और भीतर से कुछ और—मन वस्त्रहीन और लचीला तथा अंतड़ियों से महकती हुई कुछ पाने को लालायित, कुछ अनूठापन, तूफान आये, आंधी आये, बर्फ पड़े, परन्तु फिर भी तृष्णा शांत न हुई।

आशा क्या चीज है? और क्या लेना है? देश-देशांतर की सरकारों और दरबारो तक पहुंच अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक बैठकों और गोष्ठियों मे भाग लिया, पुरस्कार प्राप्त किये, पद भी याद आया तो क्या है! क्यों भूख, नंगेज, प्यास?

किसी अंदरूनी शक्ति का आकर्षण है। क्या यह संसार का प्रयोजन है?

—जसबीर सिंह अहलुवालिया

लेखक की अन्य कृतियां

पंजाबी उपन्यास

1. मलाह
2. सेनापति
3. उन्ताली वरे
4. इक राह इक पड़ा
5 शक्ति
6 त्रिया जाल
7. अमन दे राह
8 खन्यो तिक्खी
9 वालो निवकी
10. ऐरा मार्ग जाना
11 इक सरकार बांझो
12 पुनिया कि मस्सया
13. चानन खड़ा किनारे
14. टापू
15. विकेन्द्रित
16. सिर दीजे कान न कीजे
17. बा मुलायजा होशियार
18. सूत्रधार
19. गगन गंगा
20 काल अकाल
21. मेरे तो गिरधर गोपाल

कवितायें

22. अगम्मी वहिन
23 किल ते कार्मे
24. अगम्मी वहिन (मैंन्ची-2)

लेख

25. निकशुक
26. अलमी ते अऊंने

(यात्रा-संस्मरण)

27. देसां प्रदेसां विच्चों
28. मेरा रूसी सफरनामा
29. आरीयाना
30. पैरिस दे पोटरेट

इतिहास, सम्पादक और अन्य पुस्तकें

31. पंजाब दा इतिहास (1469-1839)
32. भारत दे त्योहार
33. जंग ते अमन दे लोकगीत
34. अफगानिस्तान
35. नावल कला ते मेरा अनुभव
36. मेरी साहित्यिक स्वजीवनी

(काव्य नाट)

37. कॉफले

अनुवाद (अंग्रेजी से पंजाबी मे)

38. पश्चिमी दुनिया दे निर्णयजनक जंग (पहला भाग)
39. पश्चिमी दुनिया दे निर्णय जनक जंग (दूसरा भाग)
40. पश्चिमी दुनिया दे निर्णय जनक जंग (तीसरा भाग)

मूल लेखक : जनरल जे० एफ० सी० फूलट

41. परवासी—मूल लेखक : स्टीफन गिल

(फ्रांसीसी से पजाबी में)

42. बाल शहजादा— मूल लेखक : आनतूआनद सेंत अग्जुपैरी
43. अजनबी— मूल लेखक : एलबर कामीओ
44. प्लेग— मूल लेखक : एलबर कामीओ

(हिन्दी में)

45. शक्ति (उपन्यास)
46. शान्ति के पथ पर (")
47. प्रकाश की छाया में (")
48. अन्धेरे का काफला (")
49. टापू (")
50. उन्तालीस वर्ष (")
51. कड़िया टूट गई (")
52. बा मुलायजा होशियार (")
53. त्रिया जाल (")

54. कहानी पाच लाख गावों की (उपन्यास)
55. विकेन्द्रित (")
56. *रंग-बिरंगे ये त्योहार* जनरल नॉलेज

IN ENGLISH

57. New Horizons — Military Science
58. Furrows in the Snow — Travel ogue
59 Gleanings From the Masters. — Poetry
60. Zero Hour — "
61. Light Stands Aside — Novel
62 Flaming Hills — "
63. On the Crest of Time — "
64 Trapped — "
65 *Holy Dips* — "
66. Never a Noontide — "
67. Scandal Village — "
68. The New Moses — Novel (Translation)
69. Great Mother — Biography
70. Mohan Singh — "
71. Puran Singh as a Poet — "
72. Torch of Non-Alignment. — General
73. Afghanistan — "

IN FRENCH

74. Chants Spirituels des Sikhs
75. Saintes Immersions
76. Les Histoires des Sikhs
77. L' Amour en Nagaland.
78. Jamais de Jour

नोट—ऊपरलिखित पुस्तकों में कई भारत की प्रादेशिक भाषाओं और विदेशी भाषाओं मे अनुवादित हैं।

2. इसके अतिरिक्त नरेन्द्रपाल सिंह के अनेक फुटकल लेख और कविताएं लगभग तीस देशी और विदेशी भाषाओं में अनुवादित हैं।

एक

वाह कैसा मुखड़ा है। मुखड़ा है कि थोबड़ा। दोनों चलते है। ऐसे बेसिरे मुंहों को चाहे मुखड़ा कहो या थोबड़ा। भाषा की लचक, व्याकरण के बन्धनों, वाक्य-विन्यास, लिंग, पुल्लिंग, अलंकार आदि शब्द तो सुन्दर वस्तुओं के लिए हैं। ऐसे मुंह का क्या है ! या ऐसे अन्य मुंहों का ? क्या मुंह लटकाये फिरना है : क्या मुह दिखाये फिरना है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

क्षमा भगवन्, मैं यह बोल-कुबोल बोल रहा हूं। क्या ऐसे भी किसी से छुटकारा पाया जाता है। क्या ऐसे भी किसी की ऐसी-तैसी की जाती है। चेहरा-मोहरा, शरीर आदि तो तुम्हारी देन हैं। तुम से सदा डरना चाहिए। कब किसी के मुह के साथ क्या बीत सकती है। सुन्दरता तो कांच की कोठरी है, ठोकर लगी और चूर-चूर हो गयी। मान, अहंकार बिखर गया, दरार पड़ गयी परन्तु ये जो कलाकार हैं न भगवन्, ये बड़े ही मुंहफट हैं। ये तुमसे डरते भी हैं और नहीं भी डरते और डर कर भी नहीं डरते। यह कलाकार और बुद्धिजीवी ! ये तुमसे भी विद्रोही होकर बैठ जाना चाहते हैं। ये तो तुमको भी चूर-चूर करने की जरूरत समझते हैं। और फेर यही तो है जिनके सहारे तेरी अजमत कायम है—इन्हीं का बैठाया ही तो स्वर्ग सजता है भगवन् तुम्हारा। हैं ये सयाने बुद्धिजीवी और कलाकार। यथार्थवाद, अहंवाद और वास्तविकता के नाम पर ये लोग न्यौछावर करते हैं अजमतें और मजाक उड़ाते हैं कुरूप तन और सुन्दरता का।

वैसे उस मुह को मुखड़ा या थोबड़ा कहने का कोई प्रत्यक्ष कारण है

नहीं। रंग बेशक काले और पक्के के बीच के हैं, स्याही की तरह, परन्तु मैंने उसके देश की उससे अधिक काली सूरतें देखी हैं। अगर सच पूछो तो मुझे रंग का परहेज नहीं। एक बार केन्या की हब्शिन को देखकर मेरी हृदय-गति ही रुकती दिखी थी। आह! कैसी छवि थी उसकी और कैसा उसका सुडौल शरीर था। कदम उठाती तो कयामत आती थी। मुस्कराती तो मन-मयूर नाच उठता। यह बात जुदा है कि हब्शियों की मुस्कान और हंसी उनके साथ सबसे बड़ी ठिठोली या मजाक करना है। काली चमड़ी और बीच में सफेद दांत—देव, वनमानुष या चुड़ैलें—परन्तु वह थी कि उसकी मुस्कान से बलिहारी जाने की इच्छा होती थी। उफ! अगर कभी मैं उस हब्शिन के साथ सो सकता, संभोग कर सकता, कम-से-कम उसे चूम सकता। परन्तु वह फिसल गयी। कुछ हालात ही ऐसे थे। पति उसका राजदूत था और मैंने कहा कि कौन-सा अन्तर्राष्ट्रीय मसला खड़ा करना है।

मेरा भाव कहने का यह था कि मैं केवल रंग पर फिदा होने वाला या मरने वाला नहीं। अगर मैं स्त्री होता तो कृष्ण भगवान् पर मोहित होने से न रह सकता। रंग तुम्हारा काला-स्याह है और चमड़ी तुम्हारे मुंह की मुलायम। इस चमड़ी की मुझे जरूर इसरार है—गड्ढे बेशक हजार हों, अपार हों, परन्तु जो चमड़ी मुलायम या रसीली हो तब ऐसी स्त्री को चूमने में मुझे कभी कोई इनकार नहीं रहा। खुरदरे मांस पर ओंठ रगड़कर अपना मन क्यों खराब करूं।

चमड़ी भी मुलायम है और गाल भी फूले और उभरे हुए—शायद गाल जरूरत से ज्यादा उभरे हुए हैं। यदि थोड़ा तराश कर तुम गालें कुछ सिकोड़ लो तो ठीक है। गालों में गड्ढे तो फिर भी नहीं पड़ेंगे, परन्तु ओंठ फेरते हुए और गालों को चूमते शायद मजा न आये, शायद नहीं—अवश्य।

हां, तुम्हारा नाक बेशक बहुत बेहूदा है। नथुने चिपके-से हैं और अखरने वाली बात तो यह है कि एक नथुना दूसरे से अधिक चिपका हुआ है। नाक साफ करते समय तुम्हें बहुत तकलीफ होती होगी, खास कर तब जब तुम्हें जुकाम होता होगा, नहीं? ओंठ, काम चलाऊ हैं, परन्तु चूमते समय किसी विशेष लज्जत की आशा नहीं की जा सकती। ऊपर वाले ओंठ

का आधा कोना कुछ कटा हुआ है। बेचारी को छुटपन में किसी मां, बहन भाई या सहेली ने किसी नुकीली चीज के साथ मार दिया होगा। या सीढ़ियों से गिर पड़ी होगी, या ठोकर खाकर किसी पत्थर पर चित मुंह होगी। ठोड़ी ऐसे ही है, किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी के योग्य नहीं।

बाकी रही आंखें। उन पर उसने बड़े भारी-भरकम शीशे वाली ऐनक चढ़ा ली है। कइयों को ऐनकें खूब जंचती हैं, जैसे उसे। लगता है भगवान् ने ही ऐनक जड़कर पैदा किया हो और उसका कोई खास देवता ही उसे रोज-ब-रोज फिट करता हो, फ्रेम बदलता हो, नजर टेस्ट करता हो। परन्तु उसके चेहरे पर तो ये शीशे खोपे के समान हैं — क्या मुखड़ा है?

और गले के पास दो गहरी लकीरें हैं। भई, यह करामात है। किसी गले पर मैंने ऐसी गहरी लकीरें नहीं देखीं। डबल चिन—ठोड़ी-दर-ठोड़ी देखी है और गले पर पतली लकीरें भी, परन्तु ऐसी उभरी दरारें नहीं देखीं। यह क्या कौतुक है, भगवन्! इस मुंह को अनोखा मुखड़ा न कहें तो क्या मुखारविन्द, चांद, सूर्य, वीनस या यूरेनस कहें।

जब मुंह ऐसा है तो शरीर की व्याख्या करने की क्या आवश्यकता है। सुन्दरता का पहला आकर्षण या मनमोहक चीज नहीं तो गठे हुए शरीर में क्या हो सकता है। कई बार तो इस प्रकार का भी खयाल आया कि इस कुरूप मुखौटे वाली के जिस्म पर नजर तो घुमाकर देखा जाये, परन्तु मन माना नहीं। कई कहते हैं कि बेसिर मुंह वाली लिंग-तृप्ति में कहीं अधिक प्रवीण होती है, परन्तु कलाकार या बुद्धिजीवी कहीं लिंग-तृप्ति के लिए थोड़े ही अतृप्त हैं। यदि मुंह मेरी कमजोरी समझो, तो दरअसल यह कमजोरी हमारे पूरे विकास की है। इससे मेरा अभिप्राय है, मानव-विकास—हमारी पैतृक, शारीरिक, विज्ञान से सम्बन्धित और उन्नत सभ्य रुचियां—जिनको हम उन्नत सभ्य रुचियां कहते हैं—और इनकी समस्याएं।

भला किसी ने साहसपूर्वक भयंकर शेर के मुंह की तरफ देखा है! शेरों के मुंह किसने धोये हैं भई? नजर तो पहले उनके शरीर पर ही टिकती है। उनका शरीर ही उनकी मौलिकता परिलक्षित करता है, उनका मुंह नहीं। शरीर का गठन ही वास्तविक सुन्दरता है। अपने पुरखे बन्दरों को ही ले लीजिए। इनका मुंह देखकर तो आदमी सहम जाता है ..

मुलायम, सूक्ष्म बालों वाली चमड़ी पर हाथ फेरने को मन करता है। लम्बी और धीरे-धीरे पतली होने वाली पूंछ के साथ खेलते रहिए। तीतर, मुरगाबी, तोता, चिड़िया ही ले लीजिए—मुंह बाद में और शरीर पहले। सभी चौपायों और दोपायों में से मनुष्य ही एक ऐसा दोपाया है जो मुंह पर मरता है। धत् तेरे कपड़ों की ! अगर मनुष्य नंगा होता—है तो सही परन्तु अगर नंगा रहता—तो इसकी भी असली कीमत इसकी शारीरिक सुन्दरता के आधार पर ही होती, जैसे बाकी नंगे दोपायों या चौपायों की। सभ्यता ने सब कुछ स्वाहा कर दिया है। आज कद्र है नंगेज की, मुंह नंगा है तो शेष हैं कपड़े, लिहाजा बाकी कद्र तो हुई कपड़ों की, जो कपड़ों के नीचे है, उसकी नहीं।

फिर भी मैंने तुम्हें कल्पना में नंगा करके देखने का तुम पर अहसान किया है। नहीं, कोई विशेष उपलब्धि नहीं हुई।

देखो भई लोगो, ऐसी बदसूरत स्त्री मेरे पड़ोस में आ बसी है। अब क्या मेरी हालत हो सकती है और क्या मेरी कला की।

दो

किस दिन आये थे आप मेरे पड़ोस में ? शायद कार्तिक का महीना था और इतवार का दिन। ठीक से कुछ याद नही पड़ रहा है। मेरे जैसे, तीव्र-स्मरण शक्ति रखने वाले आदमी के लिए भी कितना कुछ भूल जाता है, कुछ सालो में। महीना कार्तिक का ही होगा, क्योकि मैं बाहर धूप में खड़ा था और कार्तिक के पहले धूप में दिल्ली मे एक पल भी कहां खड़ा हुआ जाता है। इतवार वाली बात तो मैंने ऐसे ही लेखन-शैली के सामर्थ्य के तौर पर साथ मे जोड़ ली है। धिक्कार है गल्पेकार पर। कहानी पर सच्चाई का मुलम्मा चढाने के लिए कितना झूठ बोलता है—और झूठ को सत्य में बदलने के लिए कौन-कौन-सी उद्दंडता और आडम्बर नही रचता। कौन एतबार करे किसी कलाकार पर। कैसे यह जनता की आवाज और भविष्य-ज्ञाता माने जाते है। परले दर्जे के झूठे, मक्कार, दगाबाज, चोर। वैसे कलम और ब्रुश इनके हाथ में है, अपने आपको जो चाहे बताते, दिखाते और मानते फिरें। आखिर अपढ़ और बुद्धिहीन जनता को इनकी रचनाए पढ़कर ही तो परीक्षाएं देनी है और शिक्षाशास्त्री तथा बुद्धिजीवी बनना है। झूठ ! झूठ ! झूठ ! और फिर भी सच, सच, सच ! कोई क्या समझे। क्या जाने।

हां, आप (यह मुझे सचमुच याद है), तीनों कार मे थे और सामान-आपका टैम्पो या छोटे ट्रक में। आप तीन—तुम, तुम्हारा पति और तुम्हारी लगभग पांच बरस की लड़की। पर खूब ! तुम और तुम्हारी लड़की तो पीछे बैठी थी और पति तुम्हारा अगली सीट से उतरा। मैं हैरान हुआ। सोचा, कैसा असभ्य परिवार है, गंवार, कमीने, परन्तु बाद में पता चला

कि दिल्ली में नया-नया आया है, नया-नया काम होगा, नये दफ्तर की कार होगी और वह ड्राइवर का विश्वास प्राप्त करना चाहता होगा। हेकडीबाजी कहा चलती है आजकल। क्या ड्राइवर और क्या चपरासी। वे भी सरकार के चौथी श्रेणी के अफसर नियुक्त है भई! हर कोई अफसर है। जनता की भी अफसरी शान है।

तुम्हारे पति ने सामान उतरवाया। ड्राइवर के साथ सलाह कर उसने टैम्पो वाले को पैसे दिये। किराये के लिए सिर्फ एक-दो मिनट ही तकरार हुई। समझ लो, तुम्हारे पति ने उसे खुश कर दिया। बहुत बड़ी चीज है। बधाई! देखा तुमने जहां कही भी मुबारकबाद या प्रशंसा की जरूरत होती है, मैं कितना उदार-चित्त हू। लिखू मैं चाहे कितना ऊंचा-नीचा, भला-बुरा परन्तु जीवनयापन के सभी आयामों से परिचित हूं, दयालु हू और श्रद्धालु भी हो जाता हू।

चौकीदार ने घर खोला। ड्राइवर उससे ऐसे ही ऊंचे-ऊंचे बोला, डांटा, डपटा परन्तु चौकीदार ने भी तो कौन-सा वेपरवाही और लापरवाही का इजहार नही किया। ड्राइवर ने तुम्हारे पति को घर दिखाया, तुम और तुम्हारी लडकी पीछे थी। आगे-आगे क्यो नहीं? सभ्यता और शिष्टाचार के तौर पर तो स्त्री—आगे-आगे चलती है। कैसा असभ्य परिवार पड़ोस में मिला है।

भला भीतर जाते समय तुमने चोरी से मेरी तरफ क्यों देखा था? अपने पड़ोसी की तरफ! तुम्हें मालूम था क्या कि कोई तुम्हारी तरफ देख रहा है। औरतों की तरफ कोई देखे तो बिना आखें मिलाये ही इस तथ्य का ज्ञान हो जाता है। बड़ी ही चालाक होती है यह स्त्री-जाति, निर्बल जो हुई। पशु-जगत में भी मदीना का यही हाल है। कितने ढंग आते है इसे अपनी ओर आकर्षित करने के। ऐसे पल्ले सवारती जाती है और बेमतलब सिमट-सिमट कर चलती जाती है। बेशरमी की हद है। तुमने अवश्य मुझे देखते हुए देख लिया होगा, ऐसे तो नहीं तुमने साड़ी का पल्लू सवारा था और अपने आपको और सिकोड़ा था। जानते-बूझते और सयाना होते हुए भी मैं तुम्हारी अदा से आहत हो गया। कितना मसकीन और निर्बल हो जाता है आदमी, निर्बल स्त्री के सम्मुख। मुंह देखने की ललक खूटी पर

टांग देती है बेचारे को।

"थोड़ी देर के बाद तुम्हारी लड़की बाहर आयी। मैं अभी तक बाहर ही खड़ा था। शोहदा मैं, परन्तु यह भी क्या कोई शोहदापन है? यह तो आदमी का स्वभाव समझो। मैंने लड़की का ध्यान अपनी तरफ खींचा। छोटी थी आखिर। खिंच गयी। मैंने उसे अपने बगीचे में से फूल तोड़कर दिये। डिफेंस कालोनी के मकानों का यही फायदा है और यही नुकसान भी। कोई हिलना-जुलना-डुलना गुप्त नहीं, कोई रहस्य नहीं। चार फीट ऊंची दीवार बीच में है। टांगों से या आंखों से फांदते फिरो।

कहते हैं फ्लैटों की विधि नहीं चलती गरम देशों में। क्या चलता है गरम देशों में कोई पूछे। ठंडे देश हैं, महल और इमारतें सिर ताने खड़ी की गयी है—मंजिल दर मंजिल हैं, फ्लैट है, लिफ्ट है, सीढ़ियां हैं। कोई आये, कोई जाये, कोई चोरी करे या यारी, सब चलता है। मेहतरों या भंगियों का मुहल्ला हो, सब्जी मण्डी हो, डिफेंस कालोनी हो, चाणक्यपुरी हो।

उसके—तुम्हारी लड़की के—नक्श तो अच्छे हैं और रंग सांवला। महिलाओं जैसी मुस्कान थी। मैं तुम्हारे नयन नक्शों, तुम्हारी शक्ल और तुम्हारे स्वभाव का अनुमान लगा रहा था। मन को ढाढ़स बंधा। तुम देखने योग्य तो होगी ही, बातचीत में रसिक भी।

उस रात सोते-सोते मैंने तुम्हारे कई काल्पनिक चित्र बनाये—तुम्हारे मुंह और तुम्हारे शरीर के। तुम्हारा कद वगैरह तो मैंने देख ही लिया था, बाकी अपनी सूझ-बूझ और समझ से चित्रित कर लिया। संतुष्ट था कि तीन महीने के बाद पड़ोस मिला है, परन्तु जंचता। स्त्री की उम्र अधिक नही परन्तु आदमी थोड़ा उजबक है। निकटता बढ़ने की आशा है। मुझे डर था कि पिछले पड़ोस की तरह स्त्री साठ की और पुरुष बहत्तर का कहीं न हो। खैर आदमी की उम्र से भला मुझे क्या, परन्तु स्त्री तो कुछ देखने-भालने योग्य हो। पहली पड़ोसन तो मुझे फुत-फुत करती रहे। मुझे इससे कोफ्त होती। मैं कहता हम आपके फुत-फुत से बाज आये। दंतसाज के पास जाकर नये दांत जड़ाओ और फिर मुझे फुत-फुत या पुत-पुत कहना। अपने चार फुत कम हैं क्या? फुत ही फुत! कोई लड़की भी तो

जनी होती। अब तक जवान होती। न कोई लड़की और न ही बहू और आ बैठे डिफेंस कालोनी में मेरे पड़ोस में चार पुत्रों के साथ। सच जानो, जो दो साल वे मेरे पड़ोस में रहे, मैं कोई मौलिक काम न कर सका। जी चाहता था कि किसी और शहर जा बसूं या विदेश चला आऊं परन्तु कुछ महत्त्वपूर्ण गोष्ठियों और दो अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यिक विचार-गोष्ठियों ने माता जी का साथ छोड़ने का अवसर प्रदान न किया।

उनसे पूर्व पड़ोस था पड़ोस। दोनों गुजराती थे—नवविवाहित। अधिक नये भी नहीं थे। दो साल पुराने। बाल-बच्चा अभी तक नहीं था और पता नहीं होना भी था कि नहीं। पहले वर्ष तो वे चौकसी का सामान बरतते रहे थे, परन्तु हैरत की बात यह थी कि दूसरा बरस भी बिना किसी प्रसंग के गुजर गया। लेकिन वे अभी चिन्तित होने की मंजिल तक नहीं पहुंचे थे। काम-प्रवृत्ति, हैवानी भूख—अभी प्रबल थी। बच्चों की हाजिरी के बिना अभी वह साफ-साफ थी। अच्छी तरह सजी-संवरी रहती थी वह स्त्री। नाजुक भी और काम में तेज भी और सबसे बढ़कर साहित्यिक भी। पत्र-पत्रिकाओं में से रसिक, रोमासकारी तथा रोमांचकारी चीजें पढ़ती। मैंने अपनी कहानियां और उपन्यास दिये थे। कहती थी, उसे बहुत अच्छे लगते हैं। बेसक, वह अपने पति के पास सोते हुए भी मेरे सपने लेती होगी। मैं भी उसे खूब याद करता था। हमारा एक-दूसरे के यहां आना-जाना भी था। हर पार्टी में मैं अपने पड़ोसियों को पड़ोसियों की तरह बुलाता, यद्यपि सच्चाई इतनी ही थी। चोर, कमीने, नीच! हम सभी ही हैं, भई। मैं कोई अकेला नहीं।

मैं भी जाता था उनके घर। एक-दो बार उसका पति बाहर दौरे पर गया, तब भी हम मिले। सिनेमा भी इकट्ठे जाकर देखा। हाथों में हाथ डालकर भी चले थे। शरीर के साथ शरीर जोड़कर भी बैठे थे। और भी कुछ कर सकता था, परन्तु किया कुछ नहीं। वैसे दिल का मैं बुरा नहीं जैसा कि आपने इन सब पन्नों पर देखा होगा।

मैं गुजरातियों और गुजरातिनों को पहले अच्छी तरह नहीं जानता था। इस जोड़े ने मुझे उनका अन्ध-भक्त बना दिया। पंजाबिनों जैसी ेशान नहीं। न ही हाथ में जूती और न ही प्रेम-मुहब्बत में अधिक

ीव-दाव। पंजाबन प्रेम करती है मानो परेड में लाकर खड़ा करती है। उधर, गुजरातियों मे, न ही दक्षिण की स्त्रियों की भांति अत्यधिक विनयशीलता और न जी-हुजूरी। हर नजर पर शरमा जाना, हर मुस्कान के बाद सहम जाना। एक अच्छे रसिक और रुचि वाले आदमी के लिए गरिमापूर्ण और निश्चित साथ। सदा याद रहेगी सुन्दरी गुजरातन। भगवान् तुम्हारा भला करे—सात बच्चे दे। कितने हुए हैं अभी तक? तेरे पति की दीर्घायु हो। उसने भी हमारी मित्रता में कभी कोई टांग नहीं अड़ाई और न ही अविश्वासी बना। ऐसे ही तो आदमी होते है न दुनिया मे।

गुजरातन से पहले एक जर्मन जोड़ा था। जर्मन दूतावास में संयोजक या थर्ड सैक्रेटरी था। उनकी और विशेषकर उनकी बातें, बहुत आनन्द आया परन्तु इस उपन्यास का न कोई पड़ोस, पड़ोसी या पड़ोस के साथ मिलता-जुलता कोई संयुक्त नाम थोड़े है कि मैं सब पड़ोसियों का इतिहास देने के लिए बाध्य हूं।

अच्छा, नये पड़ोस तथा पड़ोसन की लड़की के साथ मित्रता की। लड़की काफी मोहक, आकर्षक, चंचल और उत्सुक थी। अच्छी अंग्रेजी बोलती थी। उस उम्र में भी। उससे मुझे बहुत कुछ पता चला। वे मद्रास से आये थे। न्यू इंडिया जनरल इंश्योरेंस कम्पनी मे उसका पिता अफसर था। अफसरों पर लोग आजकल ज्यादा जोर देते हैं। मेरा डैडी, या मेरा पिता, या मेरा पापा या कोई मिनिस्टरी मे अफसर है, बेशक चाय ही बांटता हो वहां। लड़की कहती कि उसकी मां बहुत अच्छी है। सुन्दर भी है। पहली बार वे दिल्ली आये थे। बहुत खुश थे वे दिल्ली आकर, क्योंकि अब उसका पिता पहले से भी बड़ा अफसर था। मां भी खुश थी, क्योंकि मद्रास में अक्सर घर में ही रहना पड़ता था। काफी छोटे-मोटे झंझट थे इसलिए मां को अधिक काम भी करना पड़ता था। यहां सुख से थे। वह अकेली लड़की थी साथ, परन्तु बहुत सयानी। अपने कपड़े स्वयं संभालती थी। खुद नहाती-धोती थी। बहुत बातूनी हो लड़की—परन्तु वह समझ न सकी। मुस्कराकर वह मेरे और निकट आ गयी—शारीरिक तौर पर नहीं, मानसिक तौर पर।

लड़की ने बताया कि उसका एक भाई भी था। वह मद्रास कॉलेज में

पढता था। कब आयेगा वह, परीक्षा देकर। पढाई में बहुत तेज है और पढाई मे किसी तरह का विघ्न नही डालना चाहता। हमेशा प्रथम रहता है अपनी कक्षा में। बी० ए० करके दिल्ली आयेगा और फिर शायद इंजीनियरी करे।

'तुम्हें इतनी सब बातों का कैसे पता है?'

'पता है।'

'तो बताओ तुम्हारा भाई तो सत्रह-अठारह बरस का होगा और तुम पाच की। बीच में और कोई नही हुआ क्या?'

'क्या?'

'भाई तुम्हारा इतना बड़ा है और तुम इतनी छोटी। इतना अन्तर क्यों?'

'मम्मी से पूछकर बताऊंगी।'

'नहीं, अरे भई, नही।'

'नही, मैं अपनी ओर से पूछूंगी, सहज स्वभाव से। आप चिन्ता मत कीजिए।'

'नही, इसकी कोई जरूरत नहीं। मैं जानता हूं इसका कारण।'

'क्या?'

'दो या तीन बच्चे, होते हैं बहुत अच्छे।'

मैं हंसा। वह भी हंसी। काम खत्म हुआ। कुछ और इधर-उधर की बातें कर मैंने यह किस्सा उसके मन से निकलवा दिया। उसने भी शायद बिसार दिया था। परन्तु उसकी मां के मन से वह बात कैसे निकले। वह तो रात को ऐसे मेरे साथ कमरे में घुसी कि वह बाहर ही न निकली। मेरे अन्दर भी और अपने—अर्थात् अपने घर के अन्दर भी। आदमी ही उसका क्रय-विक्रय करता लगता था और लड़की अपने आप ही आइस क्रीम वगैरह खरीदती और पैसे देती। हर फेरी वाले के साथ गिटपिट करती।

आप भी बाहर निकलिए महाराज। यह मद्रास नही, दिल्ली है। भीतर घुटे-घुटे बैठे तो तपेदिक आ पकड़ता है। मेरा मकान तीन तरफ से खुला। आपके मकान से ज्यादा हवादार है। आइए-जाइए। चलिए-फिरिए।

जैसी आपकी लड़की है, उससे आपके बारे में सहज ही अनुमान हो जाता है। इसे अपना ही घर समझिए।

परन्तु तीन दिन तक वह स्त्री अपने घर से बाहर न निकली। घर बिलकुल सजा-संवार लिया होगा। जवाब नहीं तुम्हारा। स्त्री मिले तो ऐसी ही मिले। केवल घर के काम और घर को बनाने-संवारने से सरोकार, बाकी सब कुछ फोकट।

तीन दिन के बाद जब वह घर से निकली तो मैं जरा चकरा गया। मैंने उसकी लड़की को मजबूर कर दिया था कि वह अपनी मम्मी को उस शाम को बाहर सैर कराने के लिए जरूर लाये। समय भी लगभग निश्चित था। लड़की अपने मिशन में सफल निकली। परन्तु लगता था कि मैं असफल रहा। जब मैंने उसकी मां का मुंह देखा तो मैं चकरा गया।

लीजिए। सारी मेहनत स्वाहा हो गयी। अच्छा होता, जो वह कभी भी घर से न निकलती। भीतर पड़े-पड़े ही—तपेदिक हो जाता, चाहे और कुछ हो जाता। एक बुढ़िया गयी तो दूसरा मुखौटा आ गया है मेरी कला का कल्याण करने के लिए।

परन्तु फिर मैंने अपने आपको ढांढस बंधाया, साहस बंधाया। पहली दृष्टि है। उसका पूरा मुंह भी मेरी तरफ नहीं था। रंग जरूर सांवला था परन्तु नक्श बुरे नहीं थे। रंग का क्या होता है?

अगर रंग का कुछ नहीं तो नक्शों का क्या है? मैं अच्छा पड़ोस ढूंढ़ता हूं, कोई कोठी वाली नहीं।

फिर सब्र करो भई। अच्छी तरह देखो तो सही। नजर गड़ा कर देखो। चाल अच्छी है कि नहीं। शरीर में भी नजाकत और दम है कि नहीं। नींद खराब न कर अपनी। भगवान सहायक होगा। लेते रहो रंगीन सपने, मधुर, अनिश्चित और सांकेतिक। मतलब है नींद खराब करते रहो अपनी।

तीन

परन्तु मेरी अगली दो-तीन मुलाकातों ने यह सिद्ध कर दिया कि मेरे रंगीन, मधुर, अनिश्चित तथा सांकेतिक सपनों और मेरी कला का मेल हो गया है। पड़ोसन है, सपने तो फिर भी आयेंगे, यादें भी आयेंगी परन्तु डरावने और घिनौने। सपनों से मनुष्य कैसे बच सकता है। दुनिया और जीवन आधे से बढ़कर सपना है और आधे से कम वास्तविकता। मनुष्य के विचार भी तो सपने ही है आखिर। सपनों और विचारों का और कला का भी मेल।

मैंने यह आजमा कर देखा है कि मेरी कला उस समय निखरती और चमकती है जब मैं सौन्दर्य और रोमांस से घिरा हूं। दो-चार स्त्रियों के साथ घुट रही हो। उनके ख्याल, उनकी याद मन को बेचैन करती हो, तनाव भरी स्थिति हो और उनके ख्याल में डूबा रहूं। किसी पर विजय पाने की लालसा हो, किसी से हार मानने की इच्छा। कही कोई परेशान कर रही हो। किसी की मीठी-मीठी अदाएं याद आती हों और किसी के साथ सम्बन्ध दो-टूक न हो। कही हंसी-मजाक, किसी के साथ चुम्बन-चोरी, किसी के साथ उससे भी आगे जाने की लालच। कोई कहे मर जाऊगी तुम्हारे बिना। क्यों नही अपनाते मुझे? कभी सुनू : क्या पाया मैंने तुमसे दिल लगाकर, दुख ही दुख पाया है। कोई सिहर कर कहे : कभी तो प्यार से कहो तुम मेरी हो। कोई अदा-अदा में कहे : बहुत देखे है तुम्हारे जैसे, तुम्हारा ख्याल है, बिना तुम्हारे नीद नही आयेगी। जाओ-जाओ न्हा, अपना मुंह धोओ।

हां, ऐसा वातावरण हो, आस-पास ऐसे लोग हों, तो मेरी कला खिलती है, गुलजार खिल उठता है, महक उठता है।

यदि ऐसे खिले गुलजार में मेरी पड़ोसन जैसे सैय्याद हो, तो कल्पना कहां चहकती है, विचार और भाव कहां उड़ते हैं। न अलंकारों की ठनक, न रूपों की झंकार, वह दिन नहीं भूलते जब गुजरातन मेरे पड़ोस में थी। दो वर्षों में चौबीस कहानियां, दो उपन्यास, दो यात्रा-संस्मरण और न जाने क्या-क्या लिखा था।

अब तो मेरा सर्वनाश हुआ समझो। आह ! मुश्किल से मुश्किल निकलती है और बड़ी मुश्किल यह आ पड़ी है कि अब उसके बिना भी नहीं रहा जाता : ज्यादातर उसकी लड़की के बिना। बेचारी ने पांच साल तक मेरे लिए क्या नहीं किया। अपनी मां से पहली मुलाकात करायी। निश्चित समय, निश्चित दिन उसे सैर कराने के लिए बाहर लायी। फिर बेचारी ने जिद्द करके मेरे घर से ठंडा पानी मंगवाने के लिए मां को मजबूर किया। फिर मेरे फ्रिज में उसने पिता से आग्रह करके कोका कोला रखवाया। कितना मस्कीन बनकर आया था वह मेरे पास।

'मेरी पुत्री बड़ी जिद्दी है, सरदार साहब ! क्या करें। हमारा अपना फ्रिज आते अभी देर लगेगी। शायद अगली गर्मी में ही लें। उधर गर्मियां आ रही हैं और इधर यह लड़की बर्फ, आइसक्रीम और ठंडा कोका कोला पीने के लिए जिद्द करती है।'

'स्वागत है, भाई साहब ! कोका कोला ही क्यों, जो मर्जी है, करो इस फ्रिज के साथ या इसमें। सब्जी, फल, पानी, बची हुई चीजें रखो। मैं अकेला हूं। फ्रिज तो खाली ही रहता है।'

बेशक अपनी पत्नी को भी ठंडा होने के लिए भेज दो। हां, मेरे पास गरम रखने की जुगाड़ भी है। सर्दियों में गरम, गर्मियों में सर्द। मैं अपने हाथों पर सरसो जमा सकता हूं।

और बेचारी बेटी अपने मां-बाप को मेरे घर लायी। यह रस्मी आना था मेरे घर। बेटी ने मति या सुमति दी थी अपने मां-बाप को कि जो उनका इतना अच्छा पड़ोस है, क्या उनके घर जाना उनका फर्ज नहीं ?

यह लड़की हाड़-मास की लड़की थी या कि परमाणु-शक्ति से च...

फिरकी। यह कोई आने वाले समय का रोबोट—सोचने बोलने वाली मशीन—तो नहीं थी। या कोई ऐसा अजूबा जिसके बारे में कभी-कभार अखबारों में पढ़ने को मिलता है। पिछले युगों में पिछले जीवन की जानकार। कोई गणित विद्या की आचार्य आदि। इसको यदि मैं कहूं कि मुझे प्रधानमन्त्री बना दे, तो शायद वह भी बनवा दे।

आप मेरे घर आये तो मेरी सिट्टी-पिट्टी भूला गये। उस दिन मैंने खूब तुम्हारे मुंह की तरफ देखा। नहीं, वास्तव में ऐसा कोई नक्श नहीं था जिससे मेरे भीतर झुन-झुनाहट पैदा न होती या जो मेरे ताल को न पिघलाता न ही कोई नक्श और न ही कोई आचार-व्यवहार। जब किसी को पहली बार मिलते है तो खुशी और गर्मजोशी का इजहार करते—बेशक ऊपर-ऊपर से ही पर तुम तो खोय की लोथ मेरे सोफे पर टिक गयी और फिर न ही तुम्हारा शरीर हिला और न ही जबान। वैसे तो आप कहते है कि आप बड़े सभ्य है। यही सभ्यता थी आपकी।

मैंने तुम्हारे लिए खास तौर पर दक्षिण की काफी बनाई थी, दक्षिणी क्यों, मद्रासी काफी। नया ब्राह्मण, पर क्यूलेटर सोचा था, पूछोगे तो बताऊंगा, निकालकर दिखाऊंगा। बातचीत बढ़ेगी। खरीदकर लाया था। खूब दूध गर्म किया था। इतनी खातिर तो मै उन महेलियों की भी नहीं करता जिन्होंने मेरी कला पर कई अहसान किये है। इतना तो कह दो कि काफी बढ़िया है, मैं या मेरे नौकर ने ऐसी स्वादिष्ट मद्रासी काफी बनानी कहां से सीखी है, न अक्ल न शक्ल आ गये हैं दिल्ली शहर मे।

तुझे दिल से चाहने की कोशिश मैंने उसी समय से शुरू कर दी थी परन्तु तुम्हारी बेटी मेरा पीछा ही न छोड़े। कुर्बानी की पुंज। कुर्बानी की बकरी। मैं इस बेचारी को कैसे मायूस करता? और फिर तुम्हारा पति? उस दिन के बाद वह भी वक्त-बेवक्त मुझे सुबह या शाम नमस्कार कहने का बहाना ढूंढ लेता। अब शायद उसकी इच्छा कभी भी अपना फ्रिज खरीदने की नहीं थी। मेरे साथ मित्रता ही शायद उसका फ्रिज हो। तुम्हारा नौकर भी अब तक मेरे फ्रिज का शैदाई हो गया था। सुअर का बेटा। कहता है, वाह जी वाह, बड़ा अच्छा लगता है इसको बन्द करना और खोलना। इसके अन्दर तो बहिश्त है बहिश्त। उसके बाद तुम्हारा

नौकर और मेरा नौकर मित्र हो गये।

कमाल की बात थी। मेरा नौकर तो आस-पास के मेमो और साहबों को भी मुंह नहीं लगाता था परन्तु उनके फुटवाली नौकर पर कैसे लट्टू हो गया। कोई और ऐसा फुटवाल होता तो वह उसे ठोकर भी न मारता परन्तु उससे गले मिलता। फ्रिज के ठण्डे पानी की उसे कभी कमी नहीं आने देता। न जाने और क्या-क्या देता होगा? यह अकेला मालिक, रसोई और फ्रिज का कितना ख्याल रख सकता है। और उस पर मुझ-सा मालिक?

एक दिन कहने लगा :

'नान तमिल पड़ीतु कॅंडू ईरूकिरेन।'

'क्या?'

'नान तमिल पड़ीतु कॅंडू ईरूकिरेन।'

'अरे, इसका क्या अर्थ हुआ?'

'इसका अर्थ है कि मैं तमिल सीख रहा हूं। जी हां, मैं तमिल सीख रहा हूं।'

'उस फुटवाल से?'

'जी?'

'क्यों, किसी मद्रासी के घर नौकरी करना चाहते हो?'

'लीजिए, पहले आप ही तो कहा करते थे कि इन्सान को सदैव नयी-नयी चीजें सीखनी चाहिए और फिर आप ही आरोप लगाते हैं।'

'आरोप क्या, जो मर्जी है करो परन्तु मेरा घर, मेरी नींद हराम न कर। मैं उस थोबड़े से भागता हूं और तू उसके फुटवाल को भी चूमता फिरता है।'

फिर एक दिन उसने फुटवाल की मालकिन की तारीफ शुरू कर दी। बहुत अच्छी है जी—ज्यादा बेमतलब की बात नहीं करती (और मुझे बेमतलब की बातें करने के और कोई काम नहीं?) और कभी आप उनकी हिन्दी सुनें तो हंस-हंसकर लोट-पोट हो जायेंगे—(तो अब तुमने उसे हिन्दी सिखानी शुरू कर दी है। मैंने तुझे सिखाई है और तुम आगे शागिर्द पालो। तुम जैसे नौकर मिलें सबको और मुझ जैसे मालिक जो नौकरों को हिन्दी

पढ़ायें, अंग्रेजी सिखायें तथा नयी-नयी चीजें सीखने के लिए उत्साहित क
बोल नहीं सकती, परन्तु समझ जाती है। घर बड़ा साफ-सुथरा रख
है—देखिए, अब मेरे भी स्टेनलेस स्टील के बर्तन कितने चमकते हैं
उससे खास पाउडर मंगवाया है—कहता है कि अब हमें खरीदने
जरूरत नहीं। (अच्छा, तो निकटता यहां तक पहुंच गयी है। यह फ्रिज
उपयोग का बदला है?)

परमाणु शक्ति चालित फिरकी से मित्रता तो मेरा और मेरी क
का मेल कराने तक से आयी है परन्तु फुटबाल की मित्रता मेरे नौकर
कर्मकांड तक पहुंचाती लगती है। अपने नौकर द्वारा अपनी पड़ोसन
लिए प्रशंसा सुनकर मैंने सोचा कि पता नहीं यह दोनों एक-दूसरे के क
तक प्रशंसक हो गये हैं।

भाड़ में जायें सब। मरें या जियें।

काश! मैं साधारण, सरल सामान्य व्यक्ति होता। काश! लिखने
पढ़ने की जिल्लत न होती। काम करता, विवाह कराता, बच्चे पै
कराता; खाता-पीता और मर जाता। न मेरी बीवी मुझे धुतकार
और न मैं उसे छोड़ता। न बच्चों की जिन्दगी खराब होती। न मैं इ
सौन्दर्य, रसिकता और रोमांस के चक्कर में आता।

ऐसे तरह-तरह की बलायें गले में डाल ली हैं।

चार

कला और सजा है यह असाधारणता उत्कृष्ट शिष्टता, लालित्य, कृपा। हर असाधारण जीव की आकाश की उड़ान और पाताल की ढलाई गहन है। उसमें ईश्वरीय दृष्टि भी है और शैतानी जज्ब भी। जहां समानता, सद्भावना और सुपात्रता है वहां अशिष्टता, असमानता और निराशा भी है। लेकिन इस असाधारणता के विभिन्न दायरे में एक अनूठी संपूर्णता है। निराशा के बहाव में उतार-चढ़ाव के बावजूद कोई अदृश्य शक्ति पीछा नहीं छोड़ती। ज्वार-भाटे उठते हैं, ज्वालामुखी फूटते हैं लेकिन बर्फ के नीचे गजब की गरमाइश होती है, ऐसी बातों की उड़ान का कोई अन्त नहीं। यह तो सब शब्दों का तिलस्म है, असाधारणता का जादू। वैसे मुझे ऐसी आलंकारिक और शिल्पी लेखनी से चिढ़ है। चिढ़ से बढ़कर भी नफरत। यह सामंतवादी बुर्जुआ शैली है। नहीं? फिर क्यों दुखी होकर और कठिनाई में पड़कर शब्द ढूंढ़ने की कमर बांधते शब्दकोश उलटते हैं। अपनी असाधारणता का सिक्का और सिप्पा जमाने और जतलाने के लिए। इसमें कुछ और भी जोड़ा जा सकता है अस्तित्ववाद, अभिव्यंजनावाद, उपयोगितावाद, संवेदनावाद इत्यादि। शर्म! बेशर्मी!

शर्म और धिक्कार या मुबारक और शाबाश। हां, मैं असाधारण हूं इसमें कोई संदेह नहीं। प्रतिभा ही जानो। जो कुछ है तब ही तो दुनिया पढ़ती है न मेरी रचनाएं, मेरा काव्य, ऐसा अ-उपन्यास भी उपन्यास कहलायेगा; कूड़ा, साहित्य बनेगा। अगर असाधारण न होता तो पत्नी के साथ क्यों बिगाड़ता।

हम दोनो लायलपुर के हैं। आह ! लाहौर से अस्सी मील पश्चिम की तरफ लायलपुर कैसी जगह थी। घंटाघर से आठ बाजार निकलते थे। सारे देश में अपनी आप मिसाल था लायलपुर। अब पाकिस्तानी इसे पाकिस्तान का मानचेस्टर कहते है—इतनी औद्योगिक उन्नति हुई है इस सारे जिले मे।

मैं जन्म से ही अनोखा हूं। पिता के पास खासा धन था। रूई के दो कारखाने अलग थे। खाने-पीने की कमी नही थी। उस समय सन् 47 और उससे पहले भी हमारे पास मोटर थी। खूब चलती थी हमारी मोरिस माइनर। जब वह घंटाघर जाते थे उसे देखने के लिए प्रशंसकों की भीड़ जुड़ जाती थी। बड़ा पुत्र होने के नाते पिता ने मुझे एक साल के लिए विलायत भी भेजा था। बहाना पढाई का था लेकिन हम दोनो जानते थे कि इसका असली मतलब सैर ही है। सैर और हैकड़बाजी। मेरा पिता बेसाख्ता कहा करता था कि उसने अपने बेटे को विलायत भेजा है। बस तब से ही मेरे पैरो मे चक्कर पड़ गये। एक हविश, एक रस, एक चीस—पता नही कौन-सी ऐसी शक्ति थी जो मुझे चलने-फिरने के लिए प्रेरित करती रही।

उसका पिता दुकानदार था। काच की दुकान अच्छी चलती थी लेकिन हमारा मुकाबला न था। हम लोगों के मुकाबले वह अधिक मेहनती भी था लेकिन वह बहुत सुन्दर थी। इतवार के इतवार, सिंह सभा के गुरुद्वारे जाना मेरा काम था। पिता के आदेश से बढ़कर मेरा अन्तर मुझे गुरुद्वारे ग्रंथसाहिब—अदृश्य शक्ति के चिह्न के आगे सिर झुकाने के लिए प्रेरित करता। वह भी श्रद्धालु थी गुरुद्वारे की। बैठे-बैठे एक-दूसरे को देखते। विशेष अवसरो पर लंगर या छबील (जहां संगत को पानी पिलाया जाता है) के पास मिलते। फिर कही और मिले। फिर कही और। फिर अकेले पहला आधुनिक प्रेम था यह लायलपुर में। इश्क की हवा लगने से उसकी सुन्दरता और निखर आई। विलायत गया, वहा भी कोई ऐसी मेम नही दिखी जो उसका पासग भी हो। विभाजन से चार मास पूर्व हमारी शादी हो गई। पिता ने सारा लायलपुर बुला लिया था—लाहौर और अमृतसर भी मेहमान आये थे। शुक्र है लाटसाहब को नही बुलाया। यद्यपि बुलाया

उसे भी जाना था। पाकिस्तान के नारे लगते थे लेकिन किसी को यह सपने मे भी उम्मीद नहीं थी कि चन्द महीनो में ही खून की होली खेली जाएगी। सम्पूर्ण मानवता का नंगा नाच होगा। धर्म-धर्म पर से कुर्बानिया की जाएंगी। सच्चाई और विश्वास चूर-चूर होकर पैरो के नीचे रौंदे जाएंगे।

हनीमून के लिए शायद हम मसूरी गये। उन दस दिनो के बारे में एक पूरा उपन्यास लिखा जा सकता है। शायद लिखूंगा भी।

विभाजन के समय वह अपने चाचा के यहां लखनऊ में थी। चाचा के लड़के का विवाह था। उसका एक भाई भी उसके साथ गया था, रुपयों की गठरियां बांधकर और चेकों की पोटली जेब में रखकर। विवाह के बाद उसका वहां ही रह जाने का इरादा था और चाचा के भाजे के साथ पत्ती करके वह कोई धंधा शुरू करना चाहता था। नौजवान और महत्वाकांक्षी पुत्र लायलपुर पिता के कहने में नहीं आता था और न ही पिता का उस पर काबू था और न ही बेटे का पिता पर।

विभाजन हुआ और मेरे ससुराल वाले बादशाह बन गए और हम राजा से रंक। ऐसा कई बार हुआ है इतिहास और मथिहास में। यह होनी भी है और अनहोनी भी। किसी का क्या दोष, किसी को क्या कोसना।

विभाजन ने आपबीती और जगबीती ने ही मुझे कितने सालों तक होनी और अनहोनी का कायल बनाये रखा। कुछ तो है जिसको पर्दादारी में वह परवरदिगार ऐसे नीचे गिराता है, महल झुग्गी बनते हैं और झोंपड़िया महल। कारखाने मिट जाते है और राख सोना बन जाती है। कोई विवेकशील इसका सुझाव नहीं ढूंढता। कोई तर्कपूर्ण संयोग या रिश्ता नहीं बनता और जब तर्क तथा विवेक को रास्ता न मिले तो कुओबरदार सर्वशक्तिमान है। बस यह उसका खेल और माया है। यह उसी दिव्य दृष्टि और उसकी ही कृपा और मेहरबानी है। उसके आगे माथा झुकाने और रगड़ने में ही संतोष है जो बादशाह बने उनके राज में उसकी रजा थी और जो रंक बने उनको भी उसका आसरा, उसकी रजा बिना कोई काम सिद्ध नहीं होता।

जुलाई 47 मे बिगड़ती परिस्थितियों को देखकर कुछ

ईर्ष्यालुओं ने मेरे पिता को पानी में जहर मिलाकर पिलाने का षड्यन्त्र रचा। षड्यंत्रकारियों का नेता मलेर कोटला का एक धर्मांध नवाब था जो दस साल पहले लायलपुर में आकर बस गया था। उसका भी रूई का एक कारखाना था लेकिन वह चलता नहीं था। इसीलिए वह दुखी था। बात चीत में उसने कहीं मेरे पिता के सामने नवाबी शान बघारी थी और मेरा पिता उसे उलटा पड़ गया था। बस तबसे ही उसने ईर्ष्या और वैर की गांठ बांध ली थी। वह ऐसे पाकिस्तान की कहानियां करता जैसे कायदेआजम जिन्ना भी नहीं करते थे। उसने भी, नये देश का प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति बनना हो, ऐसी बातें किया करता था।

22 जुलाई सन् 47 की कहर भरी शाम को कहर बरपा। पहले दिन ही उन्होंने लायलपुर के प्रसिद्ध और धनाढ्य को मिसाल बनाकर काटा। पांच हजार मुसलमानों का जत्था अचानक हमारे कारखाने पर टूट पड़ा। उनकी खूब तैयारी थी और उनके खासे जासूस थे। मां-बाप हमारे नहा-धो रहे थे और हम पांच भाई-बहन शहर आये हुए थे।

हमलावरों ने हमारे कारखाने को आग लगा दी और मेरे मां-बाप को तरसा-तरसा कर मारा। ऐसे ही अठारहवीं सदी में हुआ करता था जब एक सिक्ख के सिर की कीमत हुआ करती थी और आये दिन उत्तर की तरफ से लहू की नदियां उतरा करती थी। मेरी मां का उन्होंने अंग-अंग काटा।

होनी या अनहोनी?

हम आइसक्रीम खा रहे थे जब अश्रुरत लोगों ने हमारी तबाही की कहानी आकर सुनाई। बस फिर हमने कारखाने क्या जाना था और घर की तरफ क्या मुड़ना था। घंटाघर से ही तीन मील दूर हमें अपने जलते हुए कारखाने और महल नजर आने लगे पिता और माता के साथ हुई अन्याय की खबर भी पहुंच गई।

देखते-ही-देखते हजार हिन्दू-सिख इकट्ठे हो गए। त्राहि-त्राहि, हाय-हाय उनके मुंह से निकले, कई बच्चे और बूढ़े रोये। मेरी बहनों के आंसू भी नहीं रुक रहे थे। मेरे दोनों भाई मां-बाप के पास जाने की जल्दी में थे। फर किसी ने जयकारा छोड़ा, फिर क्या था? बोले सो निहाल और सतश्री

अकाल चारों ओर गूंजने लगा। हर-हर महादेव और बजरंगबली के नारे लगाते हुए अनेक हिन्दू भी आकर शामिल हो गए और हमें गुरुद्वारे ले गए। यह 22 जुलाई 47 की शाम थी।

जयकारे आज भी छूट रहे हैं परन्तु हमे सुनाई नही दे रहे। हम बहरे हो गये थे, अन्धे हो गए थे।

जयकारे अभी भी छूट रहे थे। परन्तु मुझे कुछ सुनाई नही दे रहा है। मैं आज भी अन्धा और बहरा हूं। जब कभी ऐसा दर्दनाक हादसा सामने हो तो शायद हम सभी अन्धे और बहरे हो जाते है। दिल और दिमाग काम नही करते। तर्क विफल हो जाता है। अजब आंखें है हमारी और अजब इनकी परीक्षण-शक्ति। अजीब हमारे कान हैं और अजीब इनकी श्रवण-शक्ति। विचित्र हमारी बुद्धि है। कुछ विचित्र ही उसकी विचारधारा। कुछ ऐसी ही स्थिति बिना कहे उल्लास के समय मनुष्य पर हावी हो जाती है। अधिक उल्लास के पलों और क्षणों की यादें भी सच्ची बुद्धि कर देती है।

मुझे तो लगता है कि उन्नति और सभ्यता के मार्ग पर मनुष्य अभी पहली सीढ़ी पर ही पहुंचा है।

हम मनुष्य हैं परन्तु बौने। हमारा आकार, हमारा हाड़-मांस, हमारी बुद्धि, हमारी पाचों इन्द्रियां अभी कोई संतुलन और तालमेल ढूढ रही है। अभी हम अंधकार में हैं। प्रकाश की किरणें ही बस कही यदा-कदा दीख जाती हैं। हमारे अंग सुन्दर है लेकिन कुछ ग्रहण करते नही प्रतीत होते। हमारी पलकें, पुतलियां झपकने की अभ्यस्त नही, हमारा नाक सूंघ-सूंघ परखा ही जाता है। हमारे कानो के लिए अधिक स्वरों और लय का कोई आंतरिक भाव नही। हमारे मुह को स्वाद और बेस्वाद का अहसास नहीं और हमारा भेजा, हमारा मन सब इन्द्रियों और सब कर्मों को एक ताल, एक सहकारिता में बांधने में असमर्थ है। लगता है बुद्धि और सभ्यता की किसी मंजिल पर कभी हमे पहुंचना है। मनुष्य अभी बच्चा है। बच्चों की तरह ही रोज-रोज नये अध्याय पढ़ता और सीखता है। नयी तरह ही चलता है और उसकी याददाश्त भी नयी है और स्वादो को ग्रहण करने का ढंग भी नया है। आज चन्द्रमा से दिखाई देती अपनी धरती एक खिलौना है। मनुष्य खेल रहा है, जी बहला रहा है। आंतरिक रहस्य अभी अप्रत्यक्ष

है। हाथ और मन खाली है। अगर बीसवीं सदी की महान उपलब्धियां और आविष्कार है तो विश्वयुद्ध भी महान् थे। महानता श्रेष्ठता की तरफ, महानता उन्नति की तरफ, महानता प्राप्ति की तरफ एक पग है। अगर चांद पर विजय है तो परमाणु और मिसाइलों पर विजय कहां है? किसी महत्त्वपूर्ण और शोभा के स्थान पर पहुंचने में असमर्थ मन डावाडोल है। कोई तार हिलती कहीं-कहीं दिखाई पड़ती है परन्तु हाथ नहीं लगती। किसी भावपूर्ण ताल की झंकार कानों में पड़ती है परन्तु सम्पूर्ण रूप से साकार नहीं होती। अजब प्रकाश धुएंधार है, अजब ताल-वेताल।

पांच

नारे तब भी छूट रहे थे और अब भी छूट रहे हैं। परन्तु जय-जयकार पता नहीं किसकी है। किसलिए है और क्यों है? हम जय-जयकार अलापते हैं परन्तु स्वयं निर्लेप हैं और वह भी निर्लेप है जिसकी जय-जयकार अलापी जाती है। बहरापन जय-जयकार की प्रस्तावना है। अन्धापन, अनुभव-शक्ति का स्पष्टीकरण। जय-जयकार की गूंज लगाकर हिन्दू-सिख जनता ने लायलपुर से शरणार्थियों को निकाल कर हवाई जहाज पर विदा किया। कोई दस हजार हिन्दू-सिख हमें छोड़ने के लिए आए होंगे। 22 जुलाई की शाम के बाद और अगर सच पूछें तो पाकिस्तान अस्तित्व में आ ही चुका था। उस शाम और शायद अगले दिन इक्के-दुक्के हमलों और छुरी के साथ पचास-साठ आदमी घायल हुए होंगे और 30-40 आग की लपेट में आकर जले भी होंगे। परन्तु उस रात के बाद हत्याएं कम हो गयीं, लगभग बन्द ही हो गयीं। क्योंकि अकेला हिन्दू या मुसलमान अब कहीं से भी नहीं निकलता था। कम से कम सौ-सौ का जत्था होता था दोनों तरफ।

नारे बुलंद कर-करके दस हजार हिन्दू-सिख जनता ने हमें लायलपुर से विदा किया और नारे लगाती हुई जनता ने जालन्धर के साथ आदमपुर हवाई अड्डे पर हमारा स्वागत किया। मेरी पहली और आखिरी सार्वजनिक विदाई और सार्वजनिक स्वागत। राजनीति की मसलहत है मुझे और मैं चाहता तो राजनीति में पड़कर कोई छोटा-बड़ा मन्त्री जरूर बन जाता। परन्तु इन स्वार्थों के डर ने इस रास्ते पर मुझे चलने

दिया। बकवास है यह विदा और स्वागत की नारेबाजी। कुत्ते भौंकते हैं जैसे। तार मे जैसे गुंजारी होती है। न जान न पहचान, न सूझ न समझ नारे जैसे किसी अवसर के स्वरूप की अरथी हों।

इस नारेबाजी के बीच हम पांच भाई-बहनों को आदमपुर से जालंधर लाया गया। हम लायलपुर के सबसे बड़े और धनाढ्य की संतान थे। और हमारे साथ मुसलमानों ने अत्याचार किया था। हमारे माता-पिता के साथ कहर बरपा था। जलसा हुआ। भाषण हुए। छुरे तेज हुए। खून हुए। इसान से जानवर बनने की उत्सुकता बढ़ी। बड़ा जैसा इंसान किसी उन्नति की मंजिल पर पहुंच चुका था कि पूर्ण उल्लास जैसे उसे पुकार रहा हो।

अगले दिन जलंधर मे हमें न कोई जानने वाला था, न पहचानने वाला। दिन चढ़ता और रात पड़ जाती। न हम किसी को जानते-पहचानते थे न कोई हमें। और कुछ दिन बाद विधिवत पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का विभाजन हो गया।

पुनर्वास की एक लम्बी जद्दोजहद शुरू हो गई जिसका डिफेंस कालोनी मे मेरे पड़ोस में रहने वाली मद्रासन के साथ कोई खास ताल्लुक नहीं। हां, इस पुनर्वास की कहानी के साथ मेरी पत्नी का सम्बन्ध जरूर है। मेरी पत्नी का और मेरा बिछुड़ना मेरे मौजूदा बौद्धिक और मानसिक जीवन पर सीधा प्रभाव डालता है। इसकी व्याख्या भी कुछ शब्दो में कर ही दी जाए, जलंधर से हम कहा जाते?

अमीरों की सारी दुनिया मित्र है परन्तु जब उन्हें टटोलने लगो तब कोई नही अपना बनता। असली मित्रता बुद्धिमानो मे या चोर-उचक्कों में या मजदूर श्रेणी मे भी होती है। आज हमें कोई भी मित्र दिखाई नहीं पड़ रहा था। महलों मे रहते आदमी इतना कट जाता है कि आवश्यकता पड़ने पर उसको कोई सहायक या मददगार याद ही नहीं आता। और फिर मेरे भाई और मेरी बहनो ने तो लाहौर की सीमा भी नही लांघी थी।

कहा जाते। महीना भर घूम-घूमकर अन्त में लखनऊ पहुंचे, ससुराल। ...ते है कि हमें नही जाना चाहिए था यद्यपि मुझे इसमे कोई बुराई नजर

नहीं आई। भूखे मर जाना चाहिए था परन्तु ससुराल नहीं जाना चाहिए था। जाने दीजिये। कहा किससे भूखा मरा जाता है। यह तो ऐसी सुनी-सुनाई बातें हैं और फिर मरे भी क्यों भूखा आदमी (?)

इस समय तक ससुराल वाले जम चुके थे। एक तो मेरा साला पहले ही कुछ रुपये ले आया था, बाकी गाड़ी से आए और खासा धन लेकर आये। लखनऊ वाले उनके रिश्तेदार भी सम्पन्न थे और सहृदय भी। परन्तु मेरे ससुराल वालो ने उनसे कुछ न सीखा। हम जब पहुंचे तो पहले दिन से ही उनका मुह लटक गया।

मेरा छोटा भाई बहुत समझदार है। हालात देखते ही वह अगले दिन दिल्ली चला गया। वहां उसने खोज-पड़ताल चालू की। मित्र रिश्तेदार खोजे। बैंकों के साथ दोस्ती-यारी और लड़ाई की जिसके फलस्वरुप 15 दिन के भीतर उसने दोनों भाई और दोनों बहनों को भी बुला लिया। और मैं?

और मैं निखट्टू वहां क्या करता। न इधर का रहा न उधर का। ससुर ने कहा कि वहीं टिका रहूं। देखिये क्या होता है। कारखानो का खासा मुआवजा मिलेगा। पत्नी—प्यारी पत्नी—भी आसू बिखेरने लगी। न जाओ मेरे प्रियतम। मेरी जान, मेरे देवता। भगवान सहायता करेगा। यहा ही कुछ देख-भाल कीजिये, पिता जी के साथ जम जाइये। ससुर और पत्नी के साथ तो मिल बैठता परंतु सास का क्या करता। वह तो किसी को बैठा देखकर खुश न होती। कमाल की महिला है मेरी सास। अक्ल से भी और शक्ल से भी। रचयिता उसके बारे मे कोई महाकाव्य या भारी-भरकम उपन्यास रच डाले। मैं बेचारा किस योग्य था। सारा परिवार का उद्भव आर्य वंश का है परन्तु पता नहीं कौन-सी अशुद्ध श्रेणी का यह प्रतिफल था। रंग काला है और माथे पर तीन मोटे सफेद निशान अलग-अलग रंग और ढंग वाले। बाल शायद बीस में ही भूरे और सफेद होने शुरू हो गये थे। एक टांग मारी हुई है। सर्दियो में डंडे की सहायता की जरूरत भी पड़ जाती है।

ऐसी सास की बेटी के साथ मैंने शादी की थी। उसकी बेटी के साथ प्यार जरूर था (प्यार या दिखावा?) परन्तु प्यार (क्या प्यार?) और

चीज है और विवाह और। ठीक है इस देश में विवाह किये बिना भी तो काम नहीं बनता। खाली प्यार के साथ ही आदमी किस मंजिल तक पहुंच सकता है और फिर लायलपुर जैसी जगह पर। यह भी सोचा था कि जब लड़की हमारे कारखाने आ बसेगी तो मैं कौन-सा रोज इस कलमुंही सास के माथे लगूगा।

समय प्रबल होता है। भविष्य का तकाजा। मैं उनके यहां आ बसा। कलमुंही के रोज माथे लगना पड़ता। ताने देने में भी वह बड़ी तेज थी। बड़ी चतुराई से वह भिगो-भिगो कर मारती। दर्द भी हो और निशान भी न पड़ें।

ज्यूं-ज्यूं उनके पांव लखनऊ में पक्के होते चले गये त्यों-त्यों उसकी चोटें भी गहरी और करारी होती गयीं।

हमारे कारखाने वह मुझे सुनाती। विवाह के समय पिता ने बरात की खातिर तवज्जह के लिए कोई रकम दी होगी। अब उसने वह मेरे मुंह पर दे मारी।

परन्तु दिल से वह खुश थी कि मुझे झुकाने में वह सफल हुई है। मुझे उसने कुठाली में पा लिया है। और अपनी बुद्धि के बल पर वह मुझे खूब पीट भी सकती थी।

इन दिनों मुझे यह भी समझ में आ गया कि मेरी पत्नी केवल सुन्दर ही थी परन्तु दिमागी तौर पर बस राम-राम। प्यार करती थी मुझे देख कर। प्यार जो कुछ भी हो परन्तु समझती नहीं थी मुझे। शायद प्यार और समझ की सदा से अनबन रही है। मुझे कहती :

'कुछ कीजिये न मेरी जान! इस तरह बेकार बैठे-बैठे कब तक काम चलेगा। इन कुछ महीनों में देखो लोग कहां-कहां पहुंच गये हैं।'

प्यारी मेरी सुन्दर पत्नी। मैं जन्म से ही कारखानों का मालिक, मोटरों पर चढ़ने वाला, यूरोप में घूमा-फिरा और अब मैं दुकानदारी करूं और तराजू उठाऊं और फिर वह भी कांच की दुकान पर। अगर वहां सच्चाई होती तो वह भी कोई बात थी। या फिर इस कांच में कुछ सच होता। यह तो बड़ा घटिया कांच था। फुटकर ग्लास फैक्टरी। वे लोग कुछ अन्य फर्मों का व्यापार करते और अगर कांच का थोक व्यापार होता तो

भी मैं दिलचस्पी लेता। कम से कम तरह-तरह के नमूने देख लेता तो मजा आता, तरह-तरह के कट वाले काच देख के तृप्ति तो होती।

कांच और कट ग्लास के बारे में सोचा। मुझे अहसास हुआ कि हो न हो मैं इस क्षेत्र का वास्तविक पारखी हूं, असली कलाकार। काच और सच को अलग करने वाला। कमी पकड़ने वाला। अच्छाई-बुराई वाला तराजू तोलने वाला। छोटी उम्र में तुकबन्दी की थी। अब फिर कविता लिखनी शुरू कर दी। परन्तु जल्दी ही अनुभव गद्य की तरफ चला गया। कविता और गद्य लिखना कांच और कट ग्लास जैसी ही समस्या है। मैंने लेख लिखे। फिर कहानियां और फिर उपन्यास। मैंने धर्मपत्नी से कह दिया :

'सुन्दरी, मैं तो कुछ करने योग्य नहीं। अमीर बचपन ने हड्डियों में पानी भर दिया है। अब मुझसे बैठकें नहीं निकाली जातीं और न सलाम-दुआ ही मेरे बस की है। और न ही व्यापार की अन्य चालबाजियां। पता नहीं दिमाग में क्यूं थोड़ा-बहुत प्रकाश दिखायी देता है। अगर बन सकता हूं तो बुद्धिजीवी और अगर कुछ कर सकता हूं तो लिखाई-पढ़ाई।'

मेरी खूबसूरत पत्नी के मुंह पर एक रंग आया और एक गया। बुद्धिजीवी लेखन और लेखक की चर्चा उसकी सुन्दरता पर फिसल-फिसल गये। उसने कोशिश जरूर की। उसने अपने हाथ और अपनी सूझ-बूझ का सहारा लेना चाहा लेकिन उसकी स्थूल बुद्धि फिसल-फिसल जाती थी।

जब सास ने कहानी सुनी तो खूब हंसी।

'लीजिये लेखक बनने चले हैं दामाद जी। अपने कुल को तो लीक लगायेगा ही और फिर हमारा कुल कहां बख्शेगा। पहले ही आधा लखनऊ हमें जानता है और अभी तो हम आये ही आये हैं।

मैं भी खूब हंसा। कहां से कहां आ गये भाई साहब। गुदड़ी के लाल हर जगह नहीं समाते। काश, इन लोगों का काम भी लखनऊ में न बनता। उजड़े-उजड़े ये लोग भी लखनऊ आते। लेकिन किस्मत तेज है। काच की दुकान रास आयी। मजा तो तब आता अगर ईश्वर इनको भी हमारी तरह नंग-धड़ंग करके निकालता लायलपुर से।

परन्तु ऐसी प्रार्थनाओं पर रंग नहीं चढ़ता। जब भगवान देता है तो

छप्पर फाड़कर देता है। किसी की बद आशीश क्या चीज है।

उयू ही मेरी बुद्धि के पंख उड़ने लगे, मुझे लगा कि जब तक यह पत्नी अपनी मा की छाया से नही निकलेगी इसके साथ गुजारा मुश्किल होगा परन्तु कैसे बचाता पत्नी को। इस जलती हुई छाया से। कहां ले जाता! शाबाश छोटे भाई के। उसकी पिता जैसी ही व्यापारिक सूझ-बूझ थी किसी से पैसे लेकर उसने रुई इकट्ठी करनी शुरू कर दी। रुई जगह ज्यादा घेरती है लेकिन भार उसका कुछ नहीं होता। दूसरे को प्रभावित करती है। लेकिन कभी अन्य धंधों की तरह मुंह काला नहीं करती। दूध की तरह सफेद-सफेद रुई। पता नही मैंने यह कलम-दवात को ही क्यों अपनी धरोहर बनाया। वास्तव में अगर फाउंटेनपेन और पेंसिलों का आविष्कार न हुआ होता तो मैं कभी भी लेखक न बन सकता।

भाई कुछ महीनों के बाद लखनऊ से गुजरा। रात भर उसे रुकना था। मैंने अकड़कर उसे एक दिन और रख लिया। वह तो मेरी हालत मिनटों मे भांप गया था लेकिन मैंने फिकर नही किया। मुझे यह कहकर कि मैं किसी बात की चिंता न करूं, वह दूसरे दिन गाड़ी चढ़ गया।

दस दिन बाद तार आया कि मेरे लिए घर और पैसे का प्रबन्ध हो गया है। उसकी भाभी तथा मैं दिल्ली आ जाऊं। लेकिन सास नही मान रही थी। वह कह रही थी :

'मेरी लड़की तो बड़ी नाजुक है। पता नही कैसा घर है और कैसा काम। इतनी जल्दी यह लोग कैसे टिक गये। जाइये आप (अपने पति को सुनाते हुए) जाकर देख आइये, कैसा है घर-घाट। अपनी नाजुक कली के गले में फंदा थोड़े डालना है।

खैर, पत्नी आ गयी परन्तु हर चौथे-पांचवें महीने लखनऊ से कोई न कोई उसे किसी बहाने लेने के लिए आ जाता। मां उसकी उसके लिए उदास हो जाती। मैंने पत्नी को समझाया, वह समझी, पर वह मजबूर थी। मां की मजबूरी के सामने। मैं अपनी जगह मजबूर था। सास की यही जिद थी कि हम लखनऊ वाले हैं। पैसों की कमी नही है। मैं घर-जवाई बनूं, यह इच्छा थी मेरी सास की।

मेरा छोटा भाई बहनों के लिए नही मेरे लिए ज्यादा काम करता। मैं

केवल किताबें, पत्रिकाएं और अखबार पढ़ता। थोड़ा-बहुत लिख भी लेता। कभी-कभी कहीं से सौ-पचास रुपया पारिश्रमिक भी आ जाता। बाकी सब कुछ भाई के सिर पर था। कुल दस साल पत्नी मेरे पास टिकी। हमारे तीन बच्चे हुए। लड़का, लड़की और लड़का।

धीरे-धीरे देश में मेरा नाम जाना जाने लगा। मेरी पुस्तकें छपने लगीं। पैसा बेशक नहीं था परन्तु नाम और आदर था। फिर हमें पाकिस्तान में छोड़ी हुई सम्पत्ति का मुआवजा मिल गया। तब भाई ने किसी गरीब सैनिक से डिफेंस कालोनी का यह प्लाट भूस के भाव खरीद कर मेरे लिए एक मंजिला मकान बनवा दिया। धीरे-धीरे कुछ पैसा उसमें मेरे नाम सुरक्षित ढंग के रूप में रख दिया ताकि मुझे मासिक पेंशन मिलती रहे। ऐसे भाई इस सदी में कम ही किसी के होते हैं, मुझे और अपने तीन छोटे बहन-भाइयों का समझिये, उसी में लालन-पालन किया। अपना और तीन छोटों का विवाह भी किया। इतना तो मां-बाप भी नहीं करते, भइया ! जितना तूने अपनी जान को मार कर हमारे लिए किया है।

यह सब कुछ होता रहा, चलता रहा परन्तु पत्नी देवी के साथ गांठ टूटती ही रही। हम राजा से रंक और अब फिर रंक से अपने पैरों पर खड़े हो गये थे। परन्तु मेरे ससुराल वाले तो आकाश में उड़ रहे थे। उनको पकड़ पाना हमारे बस की बात नहीं थी।

एक बार की गयी मेरी पत्नी वापस न आयी या मैं उसे लेने न गया। ऐसे लगा कि वह लखनऊ की भूल-भुलय्यों में गुम गयी है। मैंने उसे कहा था :

'ऐसे नहीं निभ पायेगी, भलीमानस ! स्पष्ट है कि मां पति की जगह नहीं संभाल सकती, सोच ले।'

उसने सोचा जितना वह सोच सकती थी। परन्तु मां उसकी उस बेचारी को ज्यादा सोचने का अवसर ही न देती। तुम पर हमारा विवाह कुर्बान हो गया। मां जी, सास जी।

अगर सच पूछिये तो यह बात भी जरूर थी कि मेरी पत्नी अब पहले जैसी सुन्दर नहीं रह गयी थी। और मुझे भी इधर-उधर मुंह मारने की आदत पड़ गयी थी। अपने ऊपर कुछ तो दोष लगाना ही चाहिए। आखिर उसकी भी तो बात रखनी है।

छह

पन्द्रह साल बीत गये हैं मुझे पत्नी से अलग हुए। पगली कहीं की, पागल पत्नी (गाली लिखने को जी करता है। हरा···) मेरी सास। थोथी, बेबुनियाद। कितनी जल्दी उन पर पागलपन सवार हो गया नयी अमीरी मिलने से। खाली बर्तन कितना खड़खड़ाता है, कितना खनकता है लेकिन भीतर से तो उसमें कुछ नही होता। इसीलिए तो कहते है कि भगवान गंजे को नाखून न दे। पैसा कमा लेना आसान है, पैसा खर्चना और उससे जीना आसान नही। यही हमारी आज की समस्या है। नव धनाढ्य हमारी सभ्यता की सफेद चीटियां है। यही हमारे समाज की सबसे बड़ी गन्दगी। सभ्यता अगर पीढ़ियों में ग्रहण नहीं की जाती तो कुछ दशकों से तो वह जरूर ग्रहण की जाती है और उसका हमारे आज से सोच-विचार और विचारधारा पर जरूर प्रभाव पड़ता है।

वे शायद नहीं जानती थी कि मेरा नाम बहुत जल्दी देश में गूंजेगा। आखिर स्त्रियां थी न।

परन्तु फिर मैं सोचता हूं कि अगर मेरा नाम गूंजता है तो उन्हें क्या। उन्होंने न तो कभी अखबार पढ़नी है न ही कभी पुस्तक। उन्हें क्या कि किसी लेखक या पत्रकार की क्या कीमत होती है। शोभा भी कितनी अशुभ हो सकती है कुछ तबको में।

इन पन्द्रह वर्षो में हम तीन बार मिले। गरमा-गरमी हुई। उसकी मां ने तलाक की मांग की। मैंने नही दी। कुछ दिनों के बाद मैंने तलाक मांगा, उसकी मां को नागवार गुजरा जैसे वह नही, उसकी मां मेरी पत्नी हो।

लड़की को वश में इस तरह कर लिया है परन्तु अब उम्र बड़ी हो रही है, शायद ढल भी रही है। अब शायद किसी स्थायी साथ की जरूरत महसूस होती है। मेरा ख्याल है जोर-जबरन मे तलाक ले ही लू।

परन्तु यह मेरी निजी समस्याए है, यहा इसके उल्लेख का क्या फायदा। मैं तो अलबत्ता यह जानना चाहूंगा कि मेरा और मेरी पत्नी का कर्म से या बाहर से आपस में क्या रिश्ता है। जहां तक लिंग-भोग का सवाल है, वह था, तीन बच्चे जो पैदा हुए, इकट्ठे खाना-पीना, रहना, उठना-बैठना। परन्तु और क्या ? और क्या ? प्रेम ? अमर रिश्ता ?

यदि प्रेम था तो उसका क्या हुआ ? किसके साथ था प्यार उसका ? उसकी सुन्दरता के साथ, उसके भीतरी दिल के साथ, उसके लिंग के साथ, या काम-वासना के साथ। इसी समस्या ने ही मेरे हर प्रेम पर दार्शनिक परछाई डाले रखी है। और जहां दार्शनिकता है वहां कविता और रोमांस नही। जब यूनान जवान था उसने होमर और एसलीज पैदा किये। उम्र भर रोमाचक कविता की जगह सुकरात की दार्शनिक रगत थी, कला की जगह विज्ञान था। बलवले की जगह बुद्धि, खेलों की जगह दन्त-कथानक और दन्त कथानकों के स्थान पर भौतिकवाद। सुकरात और अफलातून ने डेल्फी मे अपालो के मन्दिर पर लिखवाया—किसी लीक या परम्परा में अधिकता की मनाही है। जब यूनान बूढ़ा हुआ तब योरेपिडीज़ पैदा हुआ। तर्क ने मथिहास और प्रतीकवाद मिटा दिया। मुझ पर कब जवानी थी ? मेरे देश की कब जवानी थी ?

परन्तु नही, यौवन भी आये है, भीतर खोखला भी और बुढ़ापा भी आया है। यह तो सोना हमामों वाली बातें हैं। उबलते हुए और भाप निकलते हुए पानी से नहाकर ठंडे पानी मे छलांग दे मारनी या इससे उल्ट कर देना। यही कारण है कि हमारे मानसिक स्वास्थ्य ऐसे हैं चश्मेबद्दूर।

बुद्धिजीवी ने भला क्या प्रेम करना होगा। यदि उसे सुन्दरता मिलती है तो वह ज्ञान के पीछे है और अगर ज्ञान की कृपा है तो कहता है कुछ खाने-पीने और देखने की भी तमन्ना है। सुन्दरता और बुद्धि के टीके—या टिप्पणिया रोज बदलती है। यदि हुस्न क्षण-भंगुर है तो बुद्धि ने विषम, दृष्टिकोण और इन दृष्टिकोणों की पुष्टि करते तरीके या तर्कवादी

कौन-सी कम क्षण-भंगुर है। किसमें है सुन्दरता, हुस्न। निर्माण में, बेढब्बे और बे-डौल-दौल में या सुन्दर बनावट में। और क्या? समानता भी अच्छी नही लगती। प्रकृति के निर्माण में बनावट है तो इसी बनावट में एक सर्व-व्यापी एकता या एकता का अहसास। कांट ने में भी तो यही कहा था न कि समान बनावट को देखने और विश्लेषण करने का स्वाभाविक मज़ा आता है। अनेक दौरो में कुदरत के अन्दर इस बनावट की निपुणता किसी सूक्ष्मवान निर्माता—भगवान—की महानता का विश्वास दिलाती लगती है। परन्तु कही बेढंगापन भी निपुण है, जीवन है परन्तु किसके खून की कीमत पर, कहां कितनी बेहूदगी और असभ्यता है। फिर सुन्दरता कहा हुई? दर्शक की आंख मे? जैसे लैला-मजनू के बारे में कहा-सुना जाता था। दर्शक को किसने दी है यह नपुंसक दृष्टि? विद्या, ज्ञान, सूझ, बुद्धि ने? फिर कहां है यह ज्ञान-मान चमत्कार? कहां से आये यह प्रेम के ढग और तरीके? बस, बढ़ते जाइये दलदल में, डूबते जाइये वाद-विवाद मे और सोच के बताइये हमें सीधा-सादा देहाती सवाल, मुर्गी पहले हुई कि अंडा? उत्तर तो इसका भी दिया जा सकता है। डार्विन ने दिया था। परन्तु चिन्तक कसौटी पर कौन-सा उत्तर सही उतरा है।

और फिर हुस्न की सीरत क्या है? सुन्दरता गुण है? गुणों की पोटली के साथ दिमागी मण्डल तो गिनूं परन्तु बिस्तर में पास सुला के सहलाऊं किसे? किसी जानवर को? कुत्तों को भी स्त्रियां सहलाती हैं और रबड़ की स्त्रियों को प्यार करते हुए पुरुष कुछ सनकी जरूर हैं। और मैं कोई सनकी थोड़े ही हूं?

और अगर मुझे पूछें तो यह प्यार और इश्क का रोना सब झूठ है। शून्यवादी तर्कवाद। क्या प्यार, क्या इश्क! आज इन शब्दों का कोई भाव, कोई मूल्य नही रहा। हमारी भाषा और हमारे शब्दों का आधार बदल गया है। ये शब्द बने हैं, सदियो और हजारों साल पहले। आज न वह माहौल, न वह आदमी। आज हम सभ्य, ज्ञानवादी, विज्ञानवादी और वैज्ञानिक तथा तर्कशास्त्री हैं। बर्नार्ड शा ने अंग्रेजी भाषा को शुद्ध किया। शब्दों को जोड़ने में परिवर्तन, उच्चारण और व्याकरण को सही करने के [illegible] आमन्त्रित किया। वह भी तंग आ गया। हम उस सीढ़ी

पर है कि सहज ही में एक नयी भाषा गढ़ सकते है और यह आवश्यक भी है। बस ! कोई 3-4 हजार शब्द हों। भाषा की उन्नति अब अनिवार्य रूप से कुछ चीजों को समेटने और कुछ को उभारने में है। यहां इतना खुला भण्डार है, विमान और अतरिक्ष यान के साथ ही हमारी समानता है। अब वहां कठिन या गूढ़ भाषा की कौन-सी जरूरत रह गयी है।

आधे मे बढ़कर फसाद की जड़ यह शब्द है, इनका पारम्परिक रूप और वर्त्तमान युग मे इस रूप और इनके पारम्परिक भावों को संयुक्त करने की अड़चन। कहते है हम कुछ और हैं मतलब हमारा कुछ और होता है। क्या का क्या कह जाते है और इसका प्रतिफल या परिणाम, कर भी क्या का क्या जाते है। आखिर शब्द और अर्थ, कारण और कार्य की तरह ही तो सम्बन्धित हैं।

मैं क्या प्यार करता हूं पत्नी को, असली प्यार तो मेरे एक मित्र को है अपनी पत्नी से। नीम पागल है। महीना भर ठीक रहती है और फिर हफ्ते-डेढ़-हफ्ते के लिए दौरा पड जाता है। अनाप-शनाप बोलती है, उठा-पटक करती है, बर्तन तोड़ती है, कपड़े फाड़ती और बच्चों को पीटती है। तीस साल हो गये है शादी हुए परन्तु रोता-धोता मेरा मित्र उसको गले लगाये फिरता है। उसकी हमेशा तारीफ ही करता है। उसकी तस्वीर अपने पास रखे रहता है। तीन लड़के और चार लड़कियां हैं। उनमें पांच भोंडे। कोई सीधा चल नही सकता तो कोई सीधा देख नही सकता। एक बहरा है तो दूसरे के लिए बैठना भी मुश्किल है। परन्तु मेरा यह साथी, कुर्बानी का देवता, पत्नी और परिवार के प्यार में डूबा घर का और बाहर का काम करते अघाता नहीं। किसी समय भी यह जंजाल गले से उतार सकता है, परन्तु नहीं, कदाचित नही।

परन्तु यह प्यार है कि मानसिक रोग ? मैं क्या जानूं अगर वह स्वयं ही अपनी पत्नी के पागलपन का वास्तविक कारण नहीं ? अच्छा और नेक कहलवाने की ख्वाहिश कौन-सा जुल्म नही करवा सकती इन्सान से। पेंच के भीतर पेंच हैं भाई। ढकी ही रहे तो ठीक है। और फिर उस चपटी नाक और मुह से बू आने वाले, टेढ़े-मेढ़े नक्शों वाले मेरे मित्र को और कौन-सी मिलने लगी है। नीम पागल है तो क्या हुआ, स्त्री तो है ना ?

प्यार था श्रवण पुत्र का माँ के साथ—बहंगी पर उठाकर दर-दर गांव-गांव फिरा। प्यार था सीता और राम का। या क्या? लोगों के बहकावे और बातो में आकर अग्नि-परीक्षा के लिए मान गया। प्रजा प्यारी कि सीता? यह प्यार की परीक्षा है कि फर्ज की, कि शासन की?

आजकल छह महीने के लिए गया लास-वैगास या लॉजेंजलस में प्यार में अन्धा होकर भागता फिरूं हालीवुड में? जी हां, इश्क ठीक, अगर कुछ मिल न सके। एक गांव, एक शहर में कितने को मिल सकती हैं? कोई लेते देता है क्या? परन्तु इस जमाने में कमी भी क्या है? जहां जाइये, हुस्न की नुमाइश है, आंखें चौंधिया जाती हैं। मन को आनन्द आता है, अंग निढाल हो जाते हैं।

और पूछिये बताइये! परन्तु क्या पूछना और क्या बताना। इश्क, असली इश्क तो रबी इश्क है। प्रथम काल में आंखें मिलते ही सब कुछ हो जाता है। रूप है ना। न समस्या सुन्दरता की, न ही बीमारी, न कोई अनहोनी न कोई निशान, न मुंह, न बातचीत, न गाले, न ओठ, न ओठों के बीच का रस, न कोई और रस! एक बार का इश्क कैसे बदल सकेगा। फिर उसके साथ जो मरजी है-वाद-विवाद करो। जवाब नदारद। यह सुन्दरता भी है और बुद्धिमानी भी। जितनी मरजी है गूढ ज्ञान की बातें उसके सिर मे भरते जाओ। सवाल पाइये भी तो उत्तर भी दे दीजिये। इनका परमेश्वर भी सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक आदि के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं। यह गुण उसके अस्तित्व या अस्तित्वहीन होने का नहीं बल्कि वास्तव मे यह है कि एक इश्क है, एक इबादत जिसमें माबूद की शकसियत अर्थहीन है। मिजाजी प्यार में मानसिक और शारीरिक तब्दीलियां और खामिया प्यार की हकीकत को स्वाग बना देनी हैं।

अपनी पत्नी के प्यार की दास्तां को यहां खत्म करता हूं। लेकिन यह कहानी कहां खत्म होती है? जब तक सांस तब तक आस। इस जिन्दगी के साथ कुछ न कुछ घटता ही रहता है। झूले से झूले पर ही छलांगें

लगायी जाती हैं और एक गड्ढे से दूसरे गड्ढे मे ही फेंका जाता है, या फेंक दिया गया हूं।

और मदरासन के साथ इश्क पता नही झूले की उड़ान थी कि दलदल से भरा गड्ढा परन्तु वास्तविकता यह कि जल्दी ही यार डुबकियां ले रहे थे।

सात

उसे, उसकी लड़की और उसके बुर्जुआ पति को गले से उतार फेंकने में सफल हुए। मुझे कुछ ही महीने हुए थे कि एक दुर्घटना ने मुझे उनके नजदीक आने के लिए मजबूर कर दिया। न सोचा और न ही उम्मीद थी कि ऐसा फिसलूंगा कि जानते-बूझते हुए भी संभल न पाऊंगा।

अपनी तरफ से मैंने बड़ी होशियारी बरती थी। अपने नौकर को फुटबाल के साथ अधिक मेल-मिलाप बढ़ाने से रोकता रहा। उसके तमिल के पाठ खत्म करा दिए। एक बार उसके साथ मुझे गरम भी होना पड़ा था। रेफ्रीजरेटर तो हुआ, पड़ोसियों के साथ रसोई की साझेदारी की भी हद हो चुकी थी। छोटी लड़की को मेरा नौकर तरह-तरह के स्वादिष्ट खाने पकाकर चोरी-चोरी खिलाता। मुझे इससे भी डर था कि कहीं छोटी लड़की के साथ वह कुछ कर न बैठे। यद्यपि इस तरह की बात अनहोनी-सी लगती है, परंतु है नहीं। मुझे याद है कि मेरी बहन के नौकर ने पड़ोसी की बस इतने ही सालों की लड़की को पकड़ लिया था।

मैं अपने आपको भी अलग रखकर पड़ोसियों की तरफ कम देखता, न तो लड़की को अधिक पुचकारता और न ही उसके पति को। अगर उसके पति के साथ दुआ-सलाम हो जाती तो वह भी सरसरी-सी औपचारिकता के नाते। उसे शायद पता चल गया था कि मुझे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं। उसकी तरफ भी कभी ऊंची नजर से न देखा। क्या अपनी दृष्टि या नजर जलानी थी मुझे? अभी तीन-चार बार ही मिले थे। बातचीत भी हुई थी। उन्होंने मुझे खाने पर भी बुलाया था। परंतु मैंने उसकी तरफ कोई खास

ध्यान नहीं दिया था। उसने कभी कहा था—

एक बात पूछूं ? तुमने मेरी बेरुखी से क्या अंदाजा लगाया था ? क्या तुम्हे पता था कि हमारे आने से और उसके बाद अगली तीन-चार रातों, तीन-चार दिनों तक मैं तुममें ही जीता, सोता, जागता रहा था और यह कि तुम्हारी वजह से मै कितना हैरान और परेशान भी हुआ ? क्या तुम्हे मालूम था कि मैं तुम्हारी सूरत देखकर तुमसे और तुम्हारे परिवार से दूर चला गया था ? मेरे ख्याल मे तो नहीं। तुम्हें इस बात का कभी गुमान भी नही हो सकता था। और खासकर वह औरत जो अपने आपको सुंदर नही समझती। यही तो उसकी कमजोरी है। सुदर तो अधिक सुदर बने और लिपस्टिक लगा तथा अन्य शृंगार कर सज-धज बैठती हैं।

फिर भी तुम्हारे मेरे बारे में क्या ख्यालात थे ? मेरा डील-डौल तुम्हें अच्छा लगता था ? मेरी कस कर बंधी हुई पगडी ? मेरा मदरासियों के बारे में परिचित होना, तुम्हारे सारे प्रांत का मैने मीटर-मीटर देखा है। तुम भी कॉलेज के दिनों में गाइड होती थी और यात्रा करने की काफी शौकीन। पक्षीपुरम में आने वाले तीन बाजो पर हमारी तकरार हुई थी। कहते हैं वह तीन बाज रोज पुरी, कैलाश और···? और रामेश्वरम से उड़ कर यहां आते है, पंडित से भोजन करते है। इनकी मुक्ति अभी होनी है। मैं कहता था कि यह क्या बकवास है। और तुमने कहा था कि मेरे जैसे प्रसिद्ध लेखक को ऐसे अशुद्ध शब्द कहते अच्छे नही लगते।

मैं हंसा और बहस जारी रही। और तकरार मेरी पुरानी और अमर आदत है।

तुम इतनी निश्छल और मासूम हो ? दकियानूसी और रूढियों तथा परंपराओं के साथ तुम्हारा इतना गहरा प्यार (?) है, तुम यह भी नहीं देखती कि कोई झूठ-मूठ तुम्हे सब्जबाग दिखाकर सीधे रास्ते ले जा रहा है।

तुम मुझे पसंद करती थी। मैं ठीक से नही कह सकता। लेकिन यह मुझे यकीन है कि मैं तुम्हे याद जरूर आता था। मेरी लंबी उमर के बावजूद मेरी चुस्ती, मेरी शोभा, मेरी लेखनी, मेरा सर्वव्यापी ज्ञान और मेरा तुम्हारे प्रांत को अच्छी तरह जानना। तुम इतनी प्रांत भक्त हो कि

नहीं जा सकता। जब मैं महाबलिपुरम् और कांजीवरम् के ऐतिहासिक पन्नों को पलट रहा था तो तुम टकटकी लगाये मेरे चेहरे की तरफ देखे जा रही थी।

यह छोटी-छोटी घटनाएं तो मुझे अभी तक याद आ रही है। जब मैं तुममे खो चुका था, तब यह मेरा मनोरंजन हुआ करता था क्योंकि मैंने तुम्हे कभी किसी गभीरता का अधिकारी पात्र नही समझा।

यह आठ-नौ महीने मैं तुमसे बिलकुल बेलाग था। कभी-कभी अच्छे पड़ोसी होने के धर्म से भी चूक जाता था।

ऐसे साधारण ताल्लुकात थे जब तुमने एक सुबह मुझे बुलाया। तुम्हारा नौकर भागता हुआ आया था कि लड़की बेहोश हो गयी है और तुम घबरा रही हो। अच्छा था मैं तैयार था, नही तो 11 बजे तक मैं रात के पायजामे में ही बैठा रहता था।

मैं आया।

तुमने कांजीवरम् की काले पल्लू वाली बसंती साडी पहन रखी थी और तुम्हारे मुह पर चिंता की लीकीरें थी। शुक्र है तुम्हारे चेहरे पर कोई संवेदनशील भाव उत्पन्न हुए। आमतौर पर तो तुम्हारे मुह और तुम्हारे भावों के बीच जैसे फौलाद का तख्ता जड़ा हो। मैं हैरान हुआ करता था कि तुम्हारी शारीरिक और मानसिक बनावट अन्य स्त्रियों से अलग कैसे है। परंतु उस दिन मुझे पता चला कि नहीं, तुम हो तो इंसान ही। यद्यपि केवल दुर्घटनाओ के समय ही साधारणता की ऊंची पदवी तक पहुंचती हो।

शुक्र है, मैंने तुम्हें चिंतातुर देखा परंतु अफसोस तुम्हारी लड़की की हालत बुरी थी। वह बरामदे में लकड़ी के चौरस ढाचे के साथ घर बना रही थी। दो मंजिले मकान की सफल बनावट पर वह तुम्हें खुशखबरी सुनाने के लिए दौडी कि सोने वाले कमरे के खुले दरवाजे के साथ उसका सिर जोर से लगा, वह गिर पडी और दिमाग के पास खून निकलने लगा। बाल भी भीग गये और कुरता भी। परतु इससे भी बुरा कि वह बेहोश हो गयी। वह बेचारी यहां की वहा लेटी थी। तुम ठगी की ठगी खड़ी थी, न तुमने उसे [illegible] न ही उसके मुह मे पानी डाला। मैं जब आया तो तुमने

मेरी तरफ देखा। देखा क्या, जैसे तू मुझे भगवान समझकर दंडवत करती हुई पूरी की पूरी लेट गयी, जैसे दक्षिण में कई लोग करते हैं। तुम्हारे हाथ जुड़े थे और तुम नाक रगड़ रही थी।

उठ भई, इतनी मसकीनगी भी क्या है। पांच तत्त्व के ससारी बिहारी आदमी के सामने ऐसी वंदना क्यों। भीतर से मैं इतना काला हूं कि मुझे अगर कोई हाथ जोड़कर प्रणाम या नमस्कार भी करे तो भी मैं शर्म से पानी-पानी हो जाता हूं।

परंतु शायद तुम्हारी यह दंडवत कुछ अनोखी थी। तुम्हारे पति ने मुझे बाद में बताया कि तुम्हारे जीवन में बिल्कुल ऐसी ही एक घटना पहले भी हो चुकी थी। तुम्हारी छोटी बहन लकडी के चौरस टुकड़ों के घर बनाती हुई इसी प्रकार अपनी मां को खुशखबरी देने के लिए दौड़ी थी कि दहलीज में ठोकर खाकर गिर पड़ी। ऐसे ही उसे भी चोट आयी, ऐसे ही वह भी बेहोश हुई परंतु अफसोस कि ऐसी बेहोशी हुई जो उसे फिर होश में न ला सकी। उस दुर्घटना की याद करना आज स्वाभाविक ही था।

चंचल और चुस्त थी तुम्हारी लड़की और चंचल तथा चुस्त को जख्म सहन करने की शक्ति कम होती है। मैंने उसे उठाया, मोटर में पिछली सीट पर लिटाया, पैरों में फुटबाल को और तुम्हें अपने पास दायीं तरफ बिठा कर (मेरी मोटर यूरोपीय मॉडल की थी) अपने प्रसिद्ध डॉक्टर के पास ले गया। डॉक्टर ने टीका लगाया, लड़की ने आंखें खोलीं, पट्टी बांधी गयी और वह उठ खड़ी हुई। ऐसे लगा जैसे वह बेहोशी का बहाना ही कर रही थी। मैंने तुम्हारी तरफ देखा और मुस्करा दिया। मैंने ऊंची आवाज में कहा :

'लगता है इसने नाटक किया है। हमें मिले काफी दिन हो गए थे।'

तुम फिर भी न मुस्करायीं और अपनी लड़की की तरफ देखती रहीं। मेरी इच्छा हुई कि मैं तुम्हें कंधों से पकड़कर झकझोरूं। मैंने एक और कोशिश की तुम्हें हंसाने की। लड़की को कहा :

'अब तो तुम ठीक-ठाक हो, पैदल चलोगी कि मोटर में ?'

तुम फिर भी चुप थीं। लेकिन मैं भी कब बाज आने वाला था। अगर एक स्त्री को हंसा न सका तो बेमतलब ही समझो यह जिंदगी। न ही

डर और संकोच है किसी स्त्री को हाथ लगाने में। मन बेशक मैला हो लेकिन दिखावा ऐसा साफ और पाक होने का दावा करता हूं और तब-तक, जब तक तुमसे संबंध है, यह पाक ही था। मैंने एक हाथ से तुम्हारे कंधे को पकड़कर झकझोरा :

'यह ठीक है अब चिंता छोड़ो मुस्कराओ।'

और तुम मुस्करा पड़ीं।

उस शाम मैं तुम्हारे घर गया। तुम सभी बाहर बैठे थे। तुम लोगों को यहां आए लगभग साल हो चुका था। और एक बार फिर बदलती ऋतु के चिह्न फिजा में थे। तुम्हारा पति भी तुम्हारी ही तरह मेरे चरणों में गिर पड़ा—

'धन्यवाद, अति धन्यवाद! अगर आप न होते तो पता नहीं क्या हो जाता। इस लड़की के बारे में यह हमेशा ही चिंतित रहती है (उसने मुझे तुम्हारी बहन की मौत के बारे में पूरी बात बतायी)। हमारा सौभाग्य कि आप जैसा पड़ोसी मिला है। आप शाम को हमारे यहां आ जाया कीजिए। अकेला घबरा नहीं जाते क्या?'

परंतु तुम्हारा व्यवहार विचित्र था। तुम फिर पहले की तरह घुटी-घुटी-सी थी। किसी और देश, किसी और गृह में विचर रही थी। फिर झकझोरूं तुम्हें? बाद में तुम्हारे मुंह से साधारण 'शुक्रिया' भी निकला। लड़की सदा की तरह उछल-कूद रही थी। और फिर खुद ही कहने लगी :

'मैं तो नाटक कर रही थी। साधारण जिंदगी से उकता जाती हूं। स्कूल भी तो बंद है। क्यू अंकल, अभिनेत्री बनने के योग्य हूं कि नहीं?'

'तुम अभिनेत्री बनो कि नहीं परंतु मुझे तो अभिनेता बना ही दिया। और कैसे दुखांत का अभिनेता (दुखांत की दुख-सुखांत का?)। अभिनेता का दूसरा नाम बंदर है। हां, एक प्रकार का बंदर ही बना दिया तुमने।'

क्योंकि उस रात सोते समय तेरी मां के लिए मेरे दिल की कोई एक रग खिंच गयी।

आठ

मेरे दिल की एक रग खींची गई। किसी के साथ दिल लगाने का तथ्य दर्शाने का क्या यही सबसे बढ़िया साधन और यही बढ़िया शब्द है? और कैसे कहें और कैसे कोई बताये यहां आकर तो भाषा भी लंगड़ा जाती है और शायद सदा ही लंगड़ाती रहेगी। यदि अभी तक यह लंगड़ाती रही या अधूरी रही है तो बाद में कब पूर्ण होने का अवसर मिलेगा। रोमांचक काल बीत गए। इस परमाणु युग में कोई क्यों दिल लगाने का असली समय नापे, वर्णन करने के लिए सही शब्दों की पड़ताल करे, इत्यादि। दिल लगाया, था जो कुछ भी कहिये या समझ लीजिये लग गया, दो व्यक्ति मिले, शारीरिक मजबूरी खत्म हुई या विवाह हुआ। और भी जो कुछ समझिए हुआ, अब तो यह सब यान्त्रिक तत्त्व है। अरमानों और संवेदनों की पूछ-पड़ताल थोड़े ही है।

परन्तु भगवान जाने कि मुझे कैसी-कैसी आदतें हैं। जब युवक था तो इस विषय के बारे में सदा जानने को आतुर रहता था। अब बूढ़ा हो रहा हूं तो भी सही उत्तर की उत्सुकता है। बस, अगर कारण पहले रोमांचक थे तो अब यांत्रिक या वैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक है, कभी किसी के साथ आंखें चार होते ही अरमान थिरकते हैं, अपने व्यक्तित्व का एक भाग उड़ कर अगले प्राणी में जा समाता है। कभी महीनों बेलगाम रहने के बाद एकाएक आदमी जा फंसता है। टूटे दिल में भी यही बात होती है। कभी लम्बा समय बीत जाने के बाद, कभी पलक झपकते ही। मुझे याद है एक प्रेमिका। लगभग तीस साल हम एक-दूसरे के प्रति जैसे एक-दूसरे पर जान देते-रहे हों। विवाह के बारे में भी सोचा

जानते है वह टूटा कैसे ? एकदम ! चुटकी मारने के समान । उसे जुखाम हुआ । जिमखाना क्लब मे बैठे हुए उसे ऐसी खांसी आई कि खूं-खू करते उसके नथुने से एक बड़ी गन्दी-सी चीज उसकी हथेली पर आ गई । उधर वह चीज गिरनी थी और उसके बाद मेरा प्यार बरखास्त। आप नही जानते कि कितनी मुश्किल के साथ मैंने उस शाम उसे उसके घर तक पहुंचाया। मिचली आती थी उसके पास से । बाद मे उसे हाथ लगाना या उसे सूघने या चूमने का प्रश्न ही पैदा नही हुआ । बाद में उसने लाखों फोन किये, लाखों बार मिलना चाहा परन्तु मैं तो जैसे उसका शहर ही छोड गया था, देश ही छोड गया था ।

किस स्थान, किस पदवी का पात्र है इंसान ? मैं ही नही, जिसको भी देखिए ऐसा ही कमीना निकलेगा। शायद यह कमीनापन एक मजबूरी है । मेरा किसी के साथ या किसी का या इंसानियत का इसमें कोई दोष नही ।

परन्तु छोडिए भाई साहब ! बेमतलब की थोथी बातें अपना उपन्यास आगे बढ़ाएँ और हमें बताइये बाद में क्या हुआ । न कहानी, न कहानी का रस और बैठ गये उपन्यास लिखने ।

आगे क्या होना था ? मन में एक तकरार शुरू हो गई । किसकी और किसके बीच मे थी यह तकरार, कौन जाने ? बुद्धि को पटक-पटक कर फेंक रहा था तन मे उठता हुआ उभार मदरासन के लिए ।

चारपाई पर लेटूं तो वह सामने, उसके विचार सामने । उसी रात मुझे सपना भी आया, अस्पष्ट और धुंधला-सा । मैं उसे तोड़-मरोड़ कर झटक-झटक कर फेंकूं परन्तु वह, उसका विचार, उसका आकार, बार-बार मुझे, मेरे भावों, मेरे मन को झकझोरे जा रहा था । बड़ी कठिन होती है यह अवस्था । आदमी का आत्मविश्वास डगमगाने लगता है । जरजर हुआ आदमी मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ता है । कमाल है भई, हमारा अपना मन, दिल, बुद्धि परन्तु हम स्वय ही बेबस हैं इसके आगे । दीवारें खड़ी होने से पहले ही टेढ़ी हो जाती हैं । मेड़ें बांधने के पहले ही भीतर और बाहर सैलाब लग जाता है ।

उस रात के बाद मैं अकेले सोने में घबराने लगा । विवाह का शायद

सबसे बड़ा लाभ यही है। सोते समय कोई तुम्हारे पास होता है, मन भटकता नही।

अगले दिन मैंने अपनी उस समय की प्रेमिका को तार दी। वह पत्रकार थी और उस समय विश्व उद्योग मण्डल की बैठक की कार्यवाही के लिए कानपुर गयी हुई थी।

बड़ी प्यारी थी मेरी प्रेमिका। गतिशील और बुद्धिमान भी। उम्र 26-27 साल और बेमिसाल सुन्दरता की मलिका थी। विभाजन से पहले वह रावलपिंडी मे पैदा हुई थी और आयु के पहले 3-4 साल वहां ही बिताये। पिता कट्टर सिख था और वीर सेवक जत्थे का जत्थेदार। जब मार-काट शुरू हुई तो किसने छोडना था वीर सेवक जत्थे के नेता को। उसे परिवार समेत कत्ल कर दिया गया। वह चार साल की बच्ची बच निकली। कैसे? इसका उत्तर कोई क्या दे। न वह जानती है न ही कोई और। मेरी अक्ल तो यह कहती है कि जब हत्यारे आये, परिवार के सदस्य ऊपर छत पर सोये होंगे। हडबड़ाहट में तो सारे परिवार के सभी सदस्य नीचे उतर आये होंगे परन्तु इसे गहरी नीद आई होगी कि यह वहीं सोती रही। या शायद जब अचानक आख खुली होगी तो दो कदम चलके उसने आंगन से झांका होगा तो नीचे खून का दरिया बहता देखा होगा जिससे उसका मासूम दिल दहल गया होगा। जो भी हो सारे घर के लोग मर गए और यह बच्चे। अगले दिन यह गली मे मां-बाप को आवाज मारती फिरती थी कि किसी जान-पहचान वाले ने इसे पहचान लिया। उनके साथ ही वह भारत आ गई।

कुछ एक साल एक चाचा ने और चंद साल किसी मौसी ने इसे रखा। परन्तु जब होश सम्भाली तब कौन सम्भाले। ठोकरें खाती अन्त मे यह दिल्ली आ पहुंची। यहां नौकरी करने वाली लडकियों के होस्टल में मुश्किल से जगह मिली और जो भी काम मिलता, कर लेती। कभी स्कूल की अध्यापिका बनी तो कभी क्लर्की की, कभी टाइप की तो कभी दुभाषिया बनी। अब पत्रकार है, पैसे के लिहाज से सुखी है परन्तु मानसिक दिक्कत कभी-कभी परेशान करती है।

दो साल बीत गये हैं हमें मिले हुए। विज्ञान भवन में फिल्म स्टारों को पुरस्कार दिये जा रहे थे। कुदरती हम दोनों के बैठने का स्थान साथ-साथ था। वह मुझे पहले से ही नाम से जानती थी और शक्ल से पहचानती थी। हम लोग बेझिझक होकर मिले। 15 मिनट के भीतर जमीन-आसमान मिला दिये, पूर्व-पश्चिम एक कर दिये। ब्रह्माण्ड का आरम्भ और अन्त का लेखा-जोखा किया। जहन्नुम भी हो आए और स्वर्ग भी। 15 मिनट पहले समारोह शुरू होने में हमने खूब गप-शप की और बाद में बिजली के चले जाने में हम खुलकर मिले। लेखक और पत्रकार में स्वाभाविक आकर्षण है, लिहाजा हम लोगों ने एक-दूसरे को अपने-अपने टेलीफोन नम्बर दिये और लिये।

इस प्रकार हमारा मेल-मिलाप शुरू हो गया, मित्रता की नींव तो पड़ ही चुकी थी, अब पौधा भी फूट चला और हम प्रेमी की कोटि में आ गए। हम लोगों ने एक साथ रहने के एक-दूसरे को वचन भी दिये लेकिन साथ ही एक-दूसरे की मजबूरियों को भी समझते थे और अहसास करते थे। एक-दूसरे के व्यक्तित्व में लीन होते हुए भी बौद्धिक तौर पर हम दूर रहे।

वह हफ्ते में एक बार और कभी-कभी दो बार मेरे घर रह जाती है। रहने को तो अधिक भी रह जाए परन्तु फिर डिफेंस कालोनी सदाचार की श्रेष्ठता से इतनी घिरी हुई थोड़े ही है कि मुझ पर कोई उंगली न उठाये। सफेदपोशी की हविश न उड़ने देती है और न ही गिरने देती है। सभी तरह के आयामों से सफेदपोशी का आयाम सबसे अधिक मलीन है।

जिस रात पड़ोसन ने मेरी आत्मा की किसी रग की थिरकन की तो मैं कांप गया। यह क्या हो रहा था? उस रात मैंने बहुत अकेला अपने आप को महसूस किया। सालों-साल बीत गये थे मुझे पत्नी से अलग हुए। या पत्नी को छोड़े। अथवा सास ने हमें एक-दूसरे से छुड़वाया। उसके बाद मैंने हजारों रातें अकेले बिताई थीं परन्तु कभी भी पहले जैसा डरा नहीं था। मेरा जी किया, हो न हो पत्नी को बुलवा लूं, कैसे न कैसे। खुद लखनऊ चला जाऊं, कुछ करूं।

परन्तु पत्नी से बढ़कर कहीं अधिक उस समय मेरी प्रेरणा का स्रोत

पत्रकार प्रेमिका मेरे निकट थी। मैंने उसे तार दी और टेलीफोन पर भी संदेश छोड़ा। और तुम मित्र-समारोह बीच में छोड़ कर ही आ गईं। मुझे मालूम है यह काम आसान नहीं था। अखबार वालों के साथ तेरा समझौता है, पैसे का भी और अंतःकरण का भी सवाल था। परन्तु सभी समझौतों को और आपत्तियों को ताक पर रखकर तुम दौड़ी आयीं, आखिर इस तरह मेरे सारे भविष्य का प्रश्न था।

यहां प्रश्न यह पैदा होता है कि मैं मैं हूं कि मैं कुछ भी नहीं। एक शून्य भी नहीं—मैं, अपने आप को बुद्धिमान समझने वाला, बुद्धिजीवी प्रचारित करने वाला। मैं जिसका अपने मन के साथ आज तक इतना सहयोग रहा है, मैं उस मन को जीत नहीं सका। जैसे शास्त्रों का आदेश है। मुझे इसकी आवश्यकता भी अनुभव नहीं हुई। परन्तु मन ने भी मुझे नहीं जीता। हम दोनों मित्रों या साथियों की तरह रहे। परन्तु आज मेरी राह का मेहराब मेरे सामने था। आज मेरा मन विचलित होकर मुझे दबाने, मुझे जीतने के लिए उठ खड़ा हुआ। क्या गुस्ताखी हुई थी मुझसे, मेरे मन जी। इतने सालों की मित्रता क्यों तोड़ रहे हो। क्यों मजबूर करते हो मुझे, क्यों नीचा दिखाते हो मुझे, कुछ बताओ भी ना?

अच्छा अगर लड़ाई है तो लड़ाई ही सही। मैं भी चूड़ियां पहन के नहीं बैठा हूं। अवश्य जीत मेरी होगी। मेरे पास भी सेना है, बम है और अगर जंगी नाव की बदौलत लड़ाई बढ़ी तो मैं परमाणु हथियारों का भी इस्तेमाल करूंगा।

हां, लड़ाई में सभी पैंतरे जायज होते हैं। तुम जो भी चाहती हो कर लो और मैं भी जो कुछ हो सका, कर लूंगा। सबसे पहले मुझे किसी सहायक की जरूरत है। और मेरी सहायक आ गई।

शाम का समय था, जब वह पहुंची। अपना संतुलन कायम रखते हुए मैंने मुस्कराकर उसका स्वागत किया। वह हैरान :

'यह मुस्कान दिखाने के लिए आपने मुझे इतनी दूर से बुलाया है?'

'हां, प्रिये! और तुम्हारी मुस्कान चखने, चूसने के लिए।'

हमने एक-दूसरे को गले लगाया और चूमा। कितनी मिठास थी उसके चुम्बन में। उसके ओठों का रस जीवन प्रदान करता था। आलिंगन

करते हुए उसने पूछा :

'बताओ तो सही, मैंने समझा कोई दुर्घटना हो गई होगी। चारपाई पर लेटे हुए सिसक रहे होगे या कोई और संकट आ गया होगा।'

'संकट तो है ही प्रिये ! परन्तु चारपाई पर लेटे यह जीता नहीं जा सकता। इसके लिए तो मानसिक तौर पर तैयार होना होगा। अब तुम आ गई हो। मुझे धीरज रहेगा।'

'नाटक खेलने का स्वांग रच रहे हैं क्या ? या लेखक से अभिनेता बनने का विचार है ?'

'धीरे-धीरे बताऊंगा पहले मेरे गले लगो, ओंठों पर मुंह धरो, मुझे चूमने दो, और जब मैं थक जाऊं तो तुम मुझे चूमती जाओ, जब तक मैं तुम्हें न रोकूं।'

मेरी बांहों में समाने वाली मेरी चन्द्रमुखी, मेरी जान, मेरी आत्मा।

और उसने मुझे अपने आप में समा लिया।

नौ

हम दोनों बिस्तर में लेटे हुए थे—नंगे। मेरी दायीं बाह उसके कान के आस-पास थी और वह सीने के बालों से खेल रही थी।

'तुम्हारी सुडौल छाती और गोरे रंग पर कुछ भूरे और सफेद हो रहे बालों का यह संगम मुझे बडा प्यारा लगता है।'

जरूर लगता होगा क्योंकि मेरे गालों और ओंठों के सम्मुख वह अपनी गालें सदा मेरी छाती के बालों के साथ सहलाना चाहती।

मैंने अपनी छाती की तरफ देखा। हा, बाल रंग-बिरंगे थे। अच्छे लगते थे। शुक्र भगवान का मेरे सीने के बालो के गुच्छे के गुच्छे नहीं थे। एस्किमों को देखकर बेशक ग्लानि न हो परन्तु यदि मै खुद एस्किमोनुमा बालदार होता तो कभी कोई काम सिर पर न चढ़ सकता। सीने के बीच मे एक मोटा उभरा-सा तिल है। छोटी उम्र मे, सुना था कि यह सौभाग्य का चिह्न है। जीवन मे कभी किसी चीज की कमी नही आएगी। हां, किसी चीज की कमी आई भी नही। खुशी भी देखी और गम का पहलू भी देखा।

उसे मेरी छाती के रंग-बिरंगे बाल प्यारे लगते हैं और मुझे उसकी छातियों के नीचे और नाभि से जरा ऊपर दो अदद गेरुए बाल बड़े दिलचस्प लगते थे। इनका वहां पर उगना परमात्मा का कोई करिश्मा लगता था। रेत के नीचे या सूखी पहाड़ी पर अकेले-दुकेले पेड़ों का होना ठीक तुलना नहीं क्योंकि यहां तो बहार में अनोखी बहार खिली है उसकी नाभि और छातियो के बीच यह दो भूरे बाल अनेक और क।

से मुझे भगवान की विद्वता का कायल करते हैं।

मैंने उसके इन दो बालों को धीरे से खींचते हुए कहा :

'और मुझे तुम्हारे ये दो बाल उकसाते हैं।'

'शुक्र है कि आपने सही शब्द का इस्तेमाल किया है। 'उकसाते' कहा है, प्यार नही कहा।'

'सही शब्द इस्तेमाल करने की तो मैं सदा कोशिश करता हूं। परन्तु तुम क्या समझी हो ?'

'मेरे प्यार और तुम्हारी उकसाहट में बेपनाह भिन्नता है।'

'क्या ?'

'मेरा प्रेम संवेदनशील है और तुम्हारी उकसाहट बुद्धिमान। अजीब है मेरी चन्द्र, कि स्त्री की सुन्दरता भी आपको आकर्षित नहीं करती। नीचे गहराई मे आपकी विद्वता और बुद्धि सदा कोई न कोई विश्लेषण करती रहती है, तार्किक उधेड़बुन।'

मैं मुस्कराया।

'और तुम्हारे इन दो बालो में जो अलौकिक सुन्दरता है ! आखिर यह दो बाल ही तो है, शरीर के अन्य बालो की तरह, या पशुओ के बालो की भाति।'

'शर्म नही आती क्या आपको ? सुन्दर लड़की को साथ लिटाकर ऐसे घृणित तुलना के शब्द ढूंढते हो। छी-छी, लगता है मैंने गलती ही की आकर।'

मैंने अपने पैर के अंगूठे के साथ वाली उंगली के साथ उसकी पिंडली पर चिकोटी काटी।

'परन्तु बात इन दो बालों की हो रही थी सिर्फ। अगर तुम्हारे शरीर के किसी अन्य अंग की बात हो तो देखो किस श्लाघा में कहानी रचता हूं। अच्छा शुरू करूं फिर ? तेरी इन छातियो, तेरे घड़े—जांघे, तेरी ठोड़ी, तेरी नाक⋯'

वह शर्मा गई—कपड़े पहन के तो आदमी या औरत शर्मायें, वस्त्रहीन भला क्यूं शर्मायें ? और मेरी छाती पर गालें रखकर कहने लगी।

'बक-बक बन्द, अच्छा मुझे बताओ, मुझे क्यो बुलाया है ?'

क्षण-क्षण बाद वह सच्चाई जानना चाहती थी और मैं उसे झूठ बोल कर बहलाना चाहता था। कभी कहता सिर्फ तुम्हें मिलने की इच्छा हुई, कभी कहता मेरे विदेश जाने का कार्यक्रम बन रहा था तो तुम्हारे साथ सलाह करना चाहता था। परन्तु प्रेम करती हुई स्त्री को आप बुद्धू नहीं बना सकते—कम-से-कम उसे बुद्धू बनाना आसान नहीं। इस बार मैंने कहा—

'अगर सच ही जानना चाहती हो तो सुनो, मैंने एक सपना देखा था कि तुम इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में किसी विदेशी अखबार के विदेशी सम्पादक के पल्ले पड़ गयी हो और मैं घबरा गया था। सो मैंने तुम्हें बुला लिया।'

बहुत पक्का-सा मुह करके मैंने यह शब्द कहे। उसने पूछा—

'सच?'

'हां, सच।'

वह मुझसे लिपट गई—

'नहीं, आप झूठ बोलते हैं।'

'नहीं, तेरे इन दो बालों की कसम।'

'इन दो बालों की कसम पर मुझे एतबार नहीं। दिमाग वाली नहीं, किसी दिल वाली चीज की कसम खाइये।'

और मेरे मुह से अचानक निकल गया—

'यही तो अड़चन है; जिसके लिए...'

जैसे ही अपनी भूल का अहसास हुआ मैं चुप कर गया।

'कहा था न, आप झूठ बोल रहे हैं।'

'अच्छा, ठहरो.एक मिनट, गर्मी हो रही है। एयरकंडीशनर का स्विच लगा दूं।'

'नहीं, मुझे सर्दी लगेगी एयरकंडीशनर से।'

'सर्दी या गर्मी, परन्तु तुम जानती हो कि मुझे पसीने से नफरत है, खास कर जब दो नंगे शरीर साथ-साथ लगे हों।'

'अच्छा, सामने वाली खिड़की खोल दो।'

'और अगर किसी ने बाहर से झांका तो?'

'ऐसी की तैसी किसी की। यह डिफेंस कालोनी है कि देवनगर। यहां लोग झांकते थोड़ा रहते है। अच्छा, पहले समारोह के उद्घाटन के बारे में मेरी रिपोर्ट पढ़ो।'

उसने करवट बदली, हाथ बढ़ाया (मैंने उसकी पीठ पर फैलाकर हाथ फेरा) और अपना लिखने वाला बैग उसने उठाया। डबल बेड के कितने सुख होते हैं। एक तरह का यह घर का घर है। प्यार करो, बातें करो, लेटो, करवटें बदलो। रोटी टूक-टूक कर खाओ, हाथ-पैर लम्बे करके चीजें उठाओ, बत्तियां बुझाओ—अगर अकेला भी हूं तो भी मुझे चौड़े पलंग के बिना नींद अच्छी तरह नहीं आती।

मुझे याद है जब मैंने यह पलंग खरीदा था। मेरी पत्नी मुझसे नाराज हो गई।

'यह लायलपुर का महल थोड़े ही है या लखनऊ की मंजिल। डिफेंस कालोनी की कोठरियां है कोठरियां। यहां इतना बड़ा पलंग बिछा दिया तो दीवारों के साथ ठोकरें खाते फिरेंगे।'

मुझे लगता है कि उसके इन विचारों ने ही अंत में मुझे उसके साथ लगी तोड़ने पर मजबूर किया। सुसरी, लखनऊ जाकर सभ्यता और सदाचार के तौर-तरीके भी भूल गई थी। उफ! यह नयी अमीरी! मैं जानता था कि मैं उसके साथ दिमागी संतुलन स्थापित करने में असमर्थ था परन्तु फिर भी कोई-न-कोई स्तर तो होना ही चाहिए। यह भी ठीक है कि लायलपुर में और आम तौर पर उस उम्र में मैं भी कोई बुद्धिजीवी नही था और अगर मैं विभाजन के बाद इस लीक पर गजब की प्रगति की है तो उस पर भी सारा दोष मैं नही ठोंक सकता। परन्तु उसने तो अब, जैसे दिमाग न इस्तेमाल करने की सौगन्ध खा ली हो। केवल सुन्दरता को क्या मैंने चाटना था? और फिर सुन्दरता भी कमतर होती गई। भला जो स्त्री मेरे साथ पलंग पर लेटकर छोटी-मोटी बातें न कर सके, उसके साथ मैं सारा जीवन कैसे गुजार सकता हूं। उजड्ड, गंवार।

उसने अपनी रिपोर्ट पढ़कर सुनाई। उसकी इस तरतीबवार लेखनी में साहित्यिक अंश था और उसका यही अंश मुझे अच्छा लगा। जैसे उसकी रपट में साहित्यिक रंग था वैसे ही उसकी सुन्दरता और उसके

स्वभाव में एक बौद्धिक तत्त्व। हाँ, मैं उसे प्यार (?) कर सकता था, वह मेरी मित्र बनने के योग्य थी, वह मेरी साथी बनने के योग्य भी और अगर कभी जीवनसाथी की जरूरत हो, तो वह भी।

उसने अपनी रपट खत्म की और मैंने प्रशंसक दृष्टि से उसकी तरफ देखा। उसे चूमा।

'अगर तुम मुझसे शादी कर लो तो सच जानो तुम एक कवि या लेखक बन जाओ।'

'तुमसे शादी ? छी-छी····'

'छी-छी की बच्ची।'

'अच्छा, तो अब बताओ, मुझे क्यों बुलाया ?'

फिर वही कहानी।

मैंने फिर टाल-मटोल के लिए अपने अधूरे उपन्यास के चार पन्ने सुनाये जो मैंने पिछले दो दिनों में लिखे थे। गौर से सुनने के बाद वह बोली—

'आपको क्या होता जा रहा है, प्रियतम !'

'क्यों ?'

'मैं मानती हूं कि बढ़िया लेखनी वही है जो यथार्थवाद और [illegible] हो। जो मानवता की समकालीन स्तर का सही प्रतिबिंब हो, परन्तु हर शब्द, हर वाक्य, हर संकल्प, हर भावना बौद्धिक तत्त्व की कसौटी पर परखे नहीं जा सकते।'

'तुम्हारा मतलब है कि इन्हें परखा नहीं जाना चाहिए ?'

'नहीं, मेरा मतलब तो वही है जो कुछ मैंने कहा है, परखा नहीं जा सकता। हमारी सभ्यता का यह स्तर इस कसौटी के [illegible] नहीं कि मानवता में अच्छाई, न लालित्य, न श्रेष्ठता और न [illegible] आदर्श [illegible] रहा है। भाई साहब, आखिर मनुष्य की प्राकृतिक [illegible] में तो [illegible] अच्छाई का अंश है न।'

'बिल्कुल नहीं, अगर है तो शायद [illegible] अंश [illegible] मानव की अधिकतर प्राकृतिक [illegible] ही होती है। [illegible] से ही मानव के ओंठ खून से रंगे हैं। [illegible]

पछाड़ता और शिथिल को दबाता आया है। वह....'

'और फिर भी ऐसे समय मे गुरु अर्जुन, श्री रामचन्द्र, ईसा मसीह और अन्य कुर्बानी के पुंज पैदा हुए हैं।'

'यह अपवाद व्यक्तित्व हैं जिनसे आम नियमों की पुष्टि नहीं होती और फिर इस हालत मे अगर हम इन दो-चार व्यक्तियों के कामों का अवलोकन कर सही तरीके से आधुनिक मनोविज्ञान का विश्लेषण करें तो शायद उनकी कुर्बानी के जज्बे के नाम न जाने कौन-कौन से अनुचित कारण मिलें। खूनी, बलिदान के बाद खून की भावना भी हो सकती है, और कत्ल और खून के लिए किसी निर्दोष को भी दोषी बनाया जा सकता है।'

'हर हालत में अगर लेखक, वैज्ञानिक और बुद्धिजीवी का, इन्सान की तथ्यात्मक आदर्श ढांचे मे विश्वास उठ गया तो, हमारी सभ्यता का कोई भविष्य नहीं।'

'कोई भविष्य नही डियर, यही तो मैं कहता हूं।'

'तुम्हारे जैसा बुद्धिमान, बुद्धिजीवी, वैज्ञानिक से भी बदतर है। वैज्ञानिक क्या और क्यों दो उत्तर ढूंढ़ता है। उसमें कुर्बानी और बलिदान का अंश है। वह कही भी भगवान या लालित्य के साथ सीधी टक्कर नहीं लेता। उसके हाथ से बने विनाश के वसीले उसके अनुसन्धान और उसके परिणामो के अपुष्ट परिणाम है, पुष्ट नहीं। परन्तु आप जैसे बुद्धिजीवी जान-बूझकर मनुष्यता को गुमराह करने पर तुले हुए हैं। स्वतन्त्र राय और स्वतन्त्र लेखनी की स्वाधीनता बल्कि आप जैसे पुरुषों से ले लेनी चाहिए। आप लोगों की रचनाएं जला देनी चाहिए।'

'तैश में न आओ बहन जी। हम जैसे घर से निकाले गये लेखकों की लेखनी कौन-सी सदी और कौन-सी पीढ़ी मे नहीं जलायी गयी? ढाई हजार वर्ष पहले सुकरात जैसे दार्शनिक के शहजादे पर आरोप लगाया गया कि उसने देवताओं के विरुद्ध लिखा है। अन्त मे उसे जहर पीने के लिए विवश किया गया। अरस्तु की भी किताबें जलायी गयीं। और दिमास थनीज ने जहर पी। स्पिनोजा को देश से निष्कासित किया गया, लुई सोलहवें ने वाल्टेयर की रचनाएं जलवा दीं। फिर डी० एच० लारेंस,

काफ़्का और जेम्स जायस। और अभी ही गुरु अर्जुन और ईसा की बात की है उनका बलिदान भी अगर सच पूछो तो उन्नति, सभ्यता और गतिशीलता का बलिदान था। जिनके साथ संयुक्त अनेक अज्ञानी और राजसी कारण हैं। शोक उस लेखक या कवि पर जो मानवता को इतनी तेज़ी के साथ चलने, और बढ़ाने की कोशिश करे कि मानवता उसका पार न पा सके। कलम के पैगम्बर को निकालकर मानवता ने सिर ऊपर उठाया है। मेरे साथ भी शायद ऐसा ही हो। मैं भविष्य का पैगम्बर हूं—नहीं, मैं भविष्य का हथियार हूं। क्रांति का सूत्रधार।'

'परन्तु अब समय बड़ा खतरनाक है। अब तुम लोग बहुत हानि पहुंचाने के योग्य हो। मानवता कगार पर खड़ी है और इस समय जरूरत है गहरे चिन्तन की और गहरी स्फूर्ति की।'

मैं मुस्कराया :

'अच्छा जी, तो मैं यह पन्ने फाड़ देता हूं।'

मैंने दो पन्ने फाड़ने का बहाना किया।

उसने वे पन्ने मुझसे छीन लिये और उनको चूमते हुए कहा—

'हाय! यह तो मुझे अपनी जान से भी ज्यादा प्यारे हैं। मैं तो तर्क...'

'हैरानी है कि तुम मुझे ऐसा तार्किक बुद्धिजीवी समझती हो। जबकि मैं इस समय जज्बातों के संकट से घिरा जा रहा हूं।'

'क्या?'

उसके कान खड़े हो गये।

'यही कि मैं तुम्हारे प्यार में धंसता जा रहा हूं।'

'नहीं। आप कुछ और कहने लगे थे। बताइये न! बताओ मेरे प्रियतम! आपके मन में क्या है?'

'बुरा तो नहीं मानोगी। मैं जानता हूं, बताना तो मुझे पड़ेगा ही; बुलाया जो है तुमको। और हमारा रिश्ता छोटी-मोटी रुकावटों के लिए काफी पक्का है। और फिर यह हमारे रिश्ते की बात नहीं, यह एक ऐसी मुश्किल है जिसमें मैं तुम्हारी सहायता के बिना मुक्त नहीं हो सकता।'

'बताओ न, प्रिय!'

'कैसे बताऊं?' बहुत धीरे-धीरे सभी शब्द नापता-तोलता मैं बोला;

'यह मेरी पड़ोसन है न ? लगता है मैं इसके इश्क में तबाह होने लगा हूं। परसों तो वह मेरे ख्यालो, मेरे सपनों तक में आने लगी।'

एक झटका-सा लगा उसे। क्षण-भंगुर भूचाल-सा आया था। चांद के आगे बादल का एक टुकड़ा आ गया।

मैंने उसके हाथ की उंगलियों में अपनी उंगलियां डालकर दबाया—

'कहा था न, बुरा न मानना। इसीलिए तो मैंने डियर, तुम्हें बुलाया है। वह मेरे योग्य नहीं। न ही सुन्दर, न ही····'

'हर वक्त सुन्दर-सुन्दर क्या चिल्लाते रहते हो।'

'तो क्या झूठ बोला था तुम्हारे सामने। लिखने-लिखाने के लिए बेशक कोढ़ पड़े, बेशक झूठ परन्तु वास्तव में अपने आसपास सुन्दरता के बिना मेरा सांस घुट जायेगा। और फिर यह तुम्हारे हक की बात है।'

मैं मुस्कराया।

'यह कोई मजाक नहीं, यही मुश्किल है। यह कसैली और काली-कलूटी मेरे ख्यालों में रच रही है और मुझे डर लगता है। मुझे बचा लो, मेरी रानी ! मुझे अपने में समा लो, मुझे ढक लो, सभी कठिनाइयां, सभी संकटों से सुरक्षित रखो।'

और मेरी रानी ने मुझे अपने आप में समा लिया—सुरक्षित कर लिया।

दस

परन्तु कब तक वह मुझे समाये रखती। आखिर दिन तो चढ़ना ही था। वह तो शायद मुझे अपने भीतर ढककर और समाकर सदा के लिए संसार से सुरक्षित रख सकती थी लेकिन मेरी सदा की मानसिक कठिनाई, रात के समय प्रकाश की आरज़ू, दिन के समय कुशलता और परमार्थ, फुहार की तमन्ना।

हमने कितने ही साधन सोचे और कितने ही तोड़े लेकिन जो अहं है न, इंसान में वही उसकी हार और उसकी कठिनाइयों का सबसे बड़ा कारण है। वेदों और उपनिषदों के ऋषि-मुनियों ने इसीलिए आदेश दिया था—अहंकार को मारो। भगवान कृष्ण की राय में जब तक अहंकार आदमी के कर्मों का रथवान है, उसके जीवन का रथ वैसे ही चलेगा। बुद्ध भगवान ने कहा था कि कोई बारहमुखी शक्ति इतनी मारक नहीं जितनी हमारे अन्दर का अहंकार। गुरुनानक ने दुनियावी और परमार्थ दोनों रास्तों पर सफलता के साथ आगे बढ़ने के लिए अहंकार को दबाने का प्रचार किया। गुरु ग्रंथ साहब में आशा की वार ने एक पूरे का पूरा श्लोक अहंकार के बारे में लिखा है। फौजी जनरल, राजनीतिक नेता, सरकारी कर्मचारी और निम्न स्तर का मजदूर भी तब ही दुखी होता है जब उसमें अहंकार की भावना घर कर जाती है और आज—मैं लेखक—भी अहंकार के कारण ही फिसला।

मैं प्रेम की खेल का खिलाड़ी, मैं अनुभवी प्रेमी, मैं अनेक सच्चे-झूठे प्यारों वाला, मैं गुजरातनों, मदरासनों, जर्मनों या फ्रांसीसियों इत्यादि

जानने वाला, मैं यह, मैं वह—क्या इस अपने बेमालूमे जज्बे के आगे अर्थात् फेंककर दौड़ जाऊं, धिक्कार मेरी अनख को, धिक्कार मेरे जिगर को। भला कोई पूछे कि ऐसे संकट में अहंकार के पीछे लगकर अपने जीवन का नुकसान करने में मुझे क्या फायदा था सरदार साहब।

परन्तु यही तो कठिनाई है। मैं अहंकार के काबू में आ गया। आदमी यह कभी नहीं सोचता कि उसके इरादे कभी विनाश का कारण भी बन सकते हैं।

इधर अहंकार का चक्कर और उधर नियत बद हो रही थी। पूरे साल भर में सिवाय पहले कुछ साथियों के न ही अचेत और न ही सचेत। कभी किसी से इतनी मुलाकातें हुई, जितनी अब पिछले दस-पन्द्रह दिनों हुई थीं। आज दस बजे पैंजामा पहने ही बाहर निकला तो वह डाकिये से रजिस्ट्री ले रही है। भई, पिछले सारे साल तो तुम्हें कोई रजिस्ट्री नहीं आई। आज जो नौ बजे बाहर निकले हो तो कोई रोहतक का जाट तुमसे किसी घर का पता पूछ रहा है। हिन्दी अच्छी तरह तुम्हारे पल्ले नहीं पड़ती तो रोहतकी तू खाक समझेगी और तुम कहती हो कि मैं उसकी मदद करूं (तुम्हें खुद किसी सहायता की जरूरत नहीं?) सिर धोकर जब एक इतवार बाहर मैं बाल सुखाने के लिए आया तो तुम सारा परिवार बाहर धूप तापने के लिए बैठे हुए थे। भई, पिछले साल सर्दियों में क्यों नहीं बाहर बैठते थे। उस इतवार मैंने पहली बार तुम्हारे लड़के को देखा। मुझे तो तुम्हारे खसम की तरह ही वह टट्टू का टट्टू लगा। एक दिन तुम्हारा टेलीफोन खराब हो गया, पहले कभी क्यों नहीं हुआ था और तुमने नौकर को कार्यालय में शिकायत दर्ज करवाने के लिए भेजा। फिर तुम्हारी लड़की आयी डैडी के साथ कोई जरूरी बात करने के लिए। क्योंकि तुम्हारी लड़की ठीक तरह बात समझा नहीं सकी थी या समझ नहीं सकी थी सो तुम खुद आयीं। (आ जा, आ जा, तेरा ख्याल है मैं तुमसे डरता हूं, कई देखो हैं तेरी जैसी। तुम जैसी को तो नौकरानी भी न रखूं, क्या समझती हो मुझे)। अब तुम्हारे और मेरे नौकर में फिर मेल-मिलाप बढ़ने लगा है। शुक्र भगवान का तुम लोगों ने अपना रेफ्रीजरेटर ठीक लिया था।

एक दिन मैं बैठक में बैठा किताब पढ़ रहा था। नौकर बाहर गया हुआ था कि घण्टी बजी। मैंने उठकर खिड़की खोली, वहां कोई नहीं था। मैं वापस आ गया। दो वाक्य पढ़े और फिर घण्टी बजी। मैं गेट तक गया परन्तु वहाँ न आदमी न जानवर मुझे एकदम तुम्हारा ख्याल आया। पिछले कुछ दिनों में कुछ ऐसे अद्भुत अवसर देखने को मिले थे कि मैं इस घटना को भी तुमसे जोड़ने लगा। शक नहीं कि एक-दो पल के लिए मैं डर गया। वापस आकर मैं फिर कुर्सी पर बैठ गया और शीशे से बाहर देखने लगा। पुस्तक खोलकर आगे रखी परन्तु पढ़ना अभी शुरू नहीं कर सका था। क्या कौतुक है और इसका तुम्हारे साथ क्या सम्बन्ध, यही सोच रहा था और अन्त में इसका सम्बन्ध तुमसे ही निकला। जब तीसरी बार घण्टी बजने पर मैं बाहर गया तो गेट के पास खड़ी तुम्हारी लड़की खिलखिलाकर हंस रही थी और हंसते-हंसते बक रही थी—

'डर गये न ? डरा दिया न ?'

कितनी बेलौस, मासूम और प्यारी हंसी थी वह। मेरा डर और मेरा गुस्सा पिघल गया। मैंने भी एक ठहाका मारा।

'ठहर तेरे शैतान की'—मैंने हंसते-हंसते कहा।

मैंने सोचा दौड़ जायेगी परन्तु वह वहीं खड़ी-खड़ी ही दौड़ने का बहाना करती रही। दोनों पैर बार-बार तेजी के साथ उठाती और जमीन पर पटाख-पटाख मारती। मैंने उसे उठा लिया। पहली बार उसे उठाया था, उसे गले लगाया था। मैंने उसे चूमा, पहली बार ही मैंने किसी काले रंग वाले मानव जीव को चूमा था। मद्रास में रहने के बावजूद मैंने किसी काले को नहीं चूमा था और न ही मेरे पास चूमने का अवसर था या मैं चूमना नहीं चाहता था। हां, कोई फर्क नहीं था और जैसे मैंने पहले कहा था कि अगर चमड़ी मुलायम हो तो क्या फर्क पड़ता है। (काले थे है कि मैं ?)

मैंने उसे क्यों चूमा ? पहले कभी क्यों नहीं चूमा ? आत्मप्रेरणा शुभ थी ? क्या यह तुम्हें चूमने का बहाना था ? क्या यह ५

का तजुर्बा था ? मेरा ख्याल है, नहीं। जब ऐसा प्यारा बच्चा, ऐसा प्यारा मजाक करे, ऐसे खिलखिला कर हँसे, ऐसे अगले को गद्गद कर दे तो अनायास ही उसे चूमने, उसे गले लगाने का जी करता है। ठीक है, अच्छी वह मुझे पहले ही लगती थी परन्तु पहले उसने कभी मुझे गद्गद नहीं किया था। नहीं, तुम इसका कारण, इसकी प्रेरणा नहीं थी।

मैंने उसे चूमा और उसने दोनों हाथों से मेरी दाढ़ी को सहलाया फिर खुजली की और फिर मेरे फिक्सो के साथ जड़ी सारी की सारी दाढ़ी खराब कर दी। बड़ा मजा आया मुझे। मुद्दतें हो गयी थीं ऐसे दिन-दहाड़े किसी ने मेरी दाढ़ी खराब करने की जुर्रत की है।

जब तुम और मैं और नजदीक आये तो याद है एक दिन तुम्हारी लडकी ने पता नहीं किस रहस्यमय प्रेमावेग से विवश होकर मुझे तुम सब लोगों के सामने चूम लिया था। और फिर तुमने बार-बार सुनाते हुए कहा था।

हमारे रस्मों के अनुसार तो बच्चों को भी नहीं चूमते। कभी किसी दादी-परदादी या दादे-परदादे ने साल या दो साल के छोटे बच्चे को चूम लिया। परन्तु साल-दो साल से बड़े बच्चे को कदाचित नहीं चूमते। हमें हमारी सभ्यता में किसी तरह का कोई विश्वास नहीं।

मैंने शरारत की।

कोई उत्तेजना या उत्साह भी नहीं होता क्या ? आखिर यह स्वाभाविक बात है।

तुम झेंप गयी। भाड़ में जाये आपकी सभ्यता और आपके रस्मो-रिवाज। आप फिर चुम्बन शब्द ही का क्यों इस्तेमाल करते हो ? निकाल दो न इसे, अपनी भाषा में से। तो क्या आप पति-पत्नी भी नहीं चूमते एक-दूसरे को, प्रेमी-प्रेमिका के बारे में पूछना तो फिजूल और बेकार होगा।

तुम्हारे साथ बीती घटनाएं नौकर और तुम्हारे और तुम्हारी लडकी तो रहे परन्तु इन दिनों तुम्हारे पति ने मोटर खरीद ली। मुबारक हो आपको अपनी फीएट परन्तु मोटर क्या खरीदी–उसने कि मेरी शामत आ गयी।

तो तुम्हारे पास गैरज नहीं और दूसरे तुमने मोटर जिन्दगी में पहली

चार रही थी। हर दूसरे-तीसरे दिन उसके पैर मेरे दहलीज में होते, जो मोटर को साफ करने के लिए कौनसी पालिश का इस्तेमाल करना चाहिए? अब तो पालिशें हैं। परन्तु पालिशों ने यह क्या कहर पहले-पहले और कई-कई सफल नहीं हो जाती?...इसका रंग निखर नहीं जाएगा? (तुम्हें कहीं यह डर नहीं कि रूप के साथ गाड़ी की गाड़ी मोटर ही न निखर जाए?...) और आप कहां से धुलाई कराते हैं, पुताई कराते हैं?...हर महीने पर बाद हर हालत में इसे पैट्रोल से साफ करना चाहिए?

मैं मोटरों में बल्कि-सलामा मेरे लिए यह प्रश्न निर्मूल थे। परन्तु फिर भी उसका और तुम्हारे परिवार का चाव समझता था। मोटर तो तुम्हारे लिए बच्चे से भी बढ़कर कीमती थी। फ्रंट पर लगते हैं बीस हजार... अगर बाहें से निप जाए और अंक न देनी पड़े...और बच्चा बन जाता है मुफ्त में। तुम्हें तो सीट पर बैठे भी सीट की रैक्सीन चुभती थी। मतलब यह कि बाल धुले-धुले उघाड़ा कर रखते ताकि रैक्सीन या लिबास घिसकर टूट न जाए। दरवाजा जोर से बन्द करते तुम्हारा दिल कांप जाता, कहीं कोई पुरजा न कट जाए, रंग न झड़ जाए लेकिन दरवाजा तो बिना जोर से बन्द किये बन्द होता ही नहीं। कार का दरवाजा बन्द करने के लिए अभ्यास की जरूरत है, मुझे याद है कि फोर्ड के अभ्यस्त तुम मेरी विदेशी कार का तो दरवाजा ही न निकाल डालो। भई, अगर दरवाजा भारी हो तो जोर से मारने की इतनी जरूरत नहीं होती।

मैं तुम्हारी कठिनाइयां और मजबूरियां समझता था। परन्तु मैं स्वयं तुम्हारे कारण कठिनाइयों और मजबूरियों को न्योता नहीं देना चाहता था। एक उम्र होती है निस्वार्थ और निष्काम होने की और मेरी वह उम्र निकल चुकी थी। मैं तुम्हारे चाव और उमंग समझता था। परन्तु मेरे ऐसे चाव और उमंग तो बचपन से ही जाते रहे थे। (अमीर मां-बाप का बेटा-बेटी होना भी एक तरह की किस्मत ही है। बचपन में ही इतना कुछ देख लिया जाता है कि जवानी और अधेड़ उम्र में कोई चाव या उमंग नहीं रह जाती।)

अगर मैं नहीं था समझता तो आप लोगों का''' खास कर तुम्हारा दकियानूसी रवैया। बीसवीं सदी में तुम ऐसी लगती हो या रहने की कोशिश करती हो जैसे बुर्जुआ सत्रहवीं सदी अभी ही आयी हो। या यह ऋषि-मुनियों का सतयुग हो। और हमारी पहली लम्बी मुलाकात के समय तुमने यही समझाने की कोशिश की। तुम्हारे अन्दर चोर था कोई? शुरू से ही या कि लड़की को चोट लगने पर और बाद में तेरे मन में आकर बैठा? चोर! चोरनी!

वैभव की प्रतिनिधि सुपुत्री ! वह अपने आपको देवी समझती है और मुझे देवता बनने की प्रेरणा देती है। भई, अगर मुझे देवता बनना है तो इन्द्र देवता ही बनूंगा और तुम्हें मेरी मन-मरजी माननी होगी। देवता को खुश करना होगा, रिझाना होगा। देवी-देवता पर हर काम पवित्र गिना जाता है। नही ?

जिमखाना के पश्चिमी लॉन मे बैठी वह मुझसे कहने लगी—परन्तु पहले यह तो बताओ कि हम क्लब पहुंचे कैसे ?

मैं एक शनिवार की शाम को बाहर क्लब जाने के लिए निकला कि उन दोनों के दर्शन हो गये। वह कह रहा था :

देखो नही चलती।

स्पष्ट था कि पिछले एक-आध घण्टे से वह कार चलाने की कोशिश कर रहा था। लेकिन वह चलने से इनकार कर रही थी।

मैं क्या करूं ? मुझे पुरुषों के काम की क्या सूझ है।

सच कहती थी वह, मर्दाना काम क्या जाने...क्या वह स्त्रियों के सारे काम समझती थी, मुझे इस पर भी हैरानी थी।

रुंआसे आदमी ने मेरी तरफ देखा, मुझे जाना ही पड़ा। उदारता बरतते हुए मैंने उससे पूछा—क्या बात है ? उसने बताया। मैंने बोनट उठा कर देखा। बैटरी का एक टरमिनर उतरा हुआ था। सूट मैंने क्लब जाने के लिए पहन रखा था। मेरा जी कालिख से खेलने के लिए नही कर रहा था। लेकिन भगवान था कि खामख्वाह उन्हें मेरा बनाना चाहता था। खैर, मैंने कोट की आस्तीन ऊपर करके टरमिनर ठीक जगह पर जड़ दिया। मोटर चालू हो गयी। आप लोग खुशी से फूलकर कुप्पा हो गये और बाछें खिल गयी। मोटर के चालू होने की आवाज सुनकर वह भी बाहर आ गयी। आदमी ने कहा—

'देखो कितने अच्छे हैं पड़ोसी। हर मुश्किल के समय काम आते है। हम तो इनका कुछ भी नही संवारते।'

(पत्नी दे दो अपनी ! दोगे ? अगर मांगता तो शायद ही-ही करते हुए तुम हा-हा कर देते। हर पूछ पर तो पहले हा-ही तो करते हो।)

परन्तु तुमने किसी प्रकार की प्रशंसा व्यक्त नहीं की। क्या हुआ

आखिर इतनी बड़ी तोप तो नहीं दाग दी। इसमें प्रसन्नता दिखाने की या जतलाने की क्या बात है। मैंने कौन-सी तोप दागी थी। मैंने अपने मंडू को आवाज दी कि हाथ धोने के लिए पानी ले आये लेकिन तुम्हारे पति ने कहा कि तुम्हारे अन्दर ही जाकर मैं धो लूं। मैं चला गया और फिर तुम लोगों ने पूछा—'आपको देर तो नही कर दी। आप कहां जा रहे हैं ?'

'नहीं देर काहे की। जिमखाने ही जा रहा था। एक आध घंटा पहले क्या और बाद में क्या ?'

और फिर मुझे पता नहीं क्या सूझा, मैं कह बैठा—

'आप लोग भी क्यों नही चलते, क्या कर रहे हैं आज शाम को।'

मुझे सपने में भी उम्मीद नहीं थी कि आप उठ खड़े होंगे। मेरे अहसान का बदला उतारने के लिए शायद आप लोग तैयार हो गये। इतने तेज तो नही आप लोग परन्तु पता नहीं कैसे आंखों ही आंखों में इस बारे में कैसे फैसला कर लिया। मेरे लिए यह सदा एक रहस्य रहेगा। तुमने कहा कि अभी तुम्हें तैयार होना है और मैंने भी सोचा, तुम्हें कौन-सी विशेषता बरतनी है। तैयार हो जाओ अच्छी तरह। देखूं तो सही तुम तैयार हुई कैसी लगती हो। सो मैंने कहा, कि आप आराम से तैयार हो कर वहां पहुंच जाना। मैं दरबान को बताता जाऊंगा कि मैं कहां बैठा हूं। क्लब का रास्ता तो आता है न आपको ?

'हां, मैं एक बार हो आया हूं।'

'अच्छा !'

और वह बेचारा झेंप गया। जैसे अपने आपको ऊंचा बतलाने और जतलाने का उससे कोई गुनाह हो गया हो।

बस एक बार गया था। यूरोप से हमारी कम्पनी के कुछ सलाहकार आये हुए थे और उनके लिए वहां एक पार्टी की थी।

एक बार क्यों रोज-रोज आओ, स्वागत है। (खाक स्वागत है, तुम जैसों को तो हम जिमखाने की सदस्यता के लिए फार्म भी नहीं देते। मुझसे पता नहीं कैसे भूल हो गयी कि मैं तुम्हे बुला बैठा, नहीं तो तुम जैसे आदमी तो वहां पर मेहमान बनकर भी नहीं आ सकते।)

वैसे आप लोग मेरे मेहमान बनकर जिमखाना आये। रस्म के अनुसार पूछा—क्या पीयेंगे। तुमने तो भला क्या पीना था। तुम्हारा मर्द भी ना-ना कर रहा था। वैसे उसकी ना-ना की आवाज से मुझे लगा कि उसने चखी जरूर है और मजबूर करने पर पी भी लेगा। तुम्हारी तरफ देख रहा था। परन्तु फिर मैंने कहा—इन पर अपनी ह्विस्की क्यों बर्बाद करूं (अब तो देशी का भाव भी दिनोदिन बढ़ता जा रहा है) और मैंने मजबूर न किया। तुम दोनों नींबू के पानी के योग्य ही थे। तुम लोगों को जिमखाना दिखा दिया, यह कोई कम मेहरबानी है।

तुम मेरे सामने बैठ गयी और ऊंची बत्ती की रोशनी में मुझे ऐसे लगा कि तुम इतनी बुरी नहीं। रात के समय 'चल' सकती हो। काले चेहरे पर सफेद पाउडर नहीं था, उसे थोपा जैसे कई लोग करते हैं। यद्यपि तुमने शृंगार किया जरूर था। रूप का चाव था मुझे ही क्योंकि मैं ध्यान के साथ देख रहा था और वैसे भी मैं अनुभवी हूं बेशक और कोई पहचान न लेता। लिपस्टिक भी हल्की और अच्छी थी, गहरी नहीं। बैठने-उठने का भी तुम्हें तरीका आता था। मतलब यह कि तुममें थोड़ी-बहुत मिलनसार शिष्टता थी। मैंने निर्णय किया कि तुमसे नफ़रत करने की जरूरत नहीं और न ही तुमसे लड़ने की। तुम्हें प्रेम करना मेरे बस की बात नहीं थी लेकिन तुम्हारे साथ उठने-बैठने और वाद-विवाद करने में मुझे अब हिचक नहीं थी। अन्य कई पहलुओं से भी और इस पहलू से भी कि आखिर हम सामाजिक प्राणी हैं और फिर लेखक! और यह भी हर जीवन में उस नूरानी ज्योति का नूर देखने वाला या दूसरे शब्दों में तो समाजवादी।

इतने में मेरा एक परिचित मेरे पास से निकला। मैंने बुलाया और ह्विस्की का लालच दिया। वह बैठ गया या यूं कहिये, मैंने उसे जोर-जबरन बैठा लिया। थोड़ी देर के बाद मैं उसे और तुम्हारे पति को बातचीत में व्यस्त कराने में सफल हो गया। और फिर मैंने कुर्सी जरा तुम्हारे नजदीक कर ली। यह जतलाते हुए कि शायद तुम धीरे बोल रही हो। और मुझे ठीक तरह सुनाई नहीं दे रहा है।

'अब बताओ, तुम क्या कह रही थी?'

'यह कि आप लोग उत्तर वाले काफी खुले स्वभाव के हैं। हमारे

समाज में स्त्री-पुरुष का अकेले मिलना, क्लबों में जाना और नाचने की मनाही है।'

'आप जानती हैं आप किसके साथ बात कर रही हैं। मैं भी मद्रास में रह चुका हूं। मद्रास जिमखाने में कई मदरासनों के साथ मैं नाच चुका हूं। और (मैंने सोचा कि नाहीं कर दूं परन्तु ऐसे ही रौब गांठने की गरज से मैंने यह कह दिया। यद्यपि बाद में जाकर पता चला कि इसका असर ठीक नहीं हुआ।) कुछ मद्रासी लड़कियों के साथ शराब भी पी है। अकेले। यदि और जानना चाहें तो वह भी बता सकता हूं।'

'परन्तु सभी उंगलियां तो समान नहीं होतीं।'

मैंने उसकी उंगलियों की तरफ देखा, अच्छी थी। लम्बी और पतली और गेरए रंग की नेल पालिश।

'यह तो मैं मानता हूं परन्तु अगर आप सारे मद्रास को असभ्य बनाने की कोशिश करें तो मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं।'

चोट करारी थी। वह तमकी।

'तो क्या सभ्यता क्लबों और नाचों में ही है। हमारा सभ्यता का पैमाना अलग ही लगता है।'

'अलग क्यों। हजारों सालों मे विकास करता हुआ इंसान क्या उस स्तर पर भी नहीं पहुंचा कि सभ्यता और असभ्यता जैसे शब्दों के भावों मे भेद ढूंढ़ सके।'

'हां, जरूर है। सभ्यता का भाव अमेरिकनों और फांसीसियों, भारतीयों और यहूदियों तथा अफ्रीका के हब्शियों के लिए अलग-अलग हो सकता है। माहौल, नस्ल और अन्य कई कारण भी।'

'वाह ! खूब गहरा ज्ञान बखान रही हैं।'

'और भारत में भी उत्तरी और दक्षिणी वासियों में भिन्न ?'

'मैं नहीं, यह आप सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं।'

'लीजिये, आप तो पल-पल रंग बदलने लगे। कभी कुछ, पल-भर बाद कुछ। चलिये, यही तो स्त्री की महानता है। हां, उस दिन बख्शीपुरम से आने वाले बाजों के बारे में हुई बातचीत आपको याद है क्या ?'

'वाह, उसका और इस चर्चा का क्या सम्बन्ध. और तालमेल ? कहां

घोड़ा, कहां ऊंट !'

'जरा और तमकिये, देख रहा हूं आप कितने गहरे पानी में हैं।'

'क्या आप नाचते हैं ?'

'क्यों ?'

'बस, ऐसे ही पूछ लिया। क्यों, यह कोई राज है क्या ?'

'नहीं।'

'आपने 'नहीं' तो ऐसे कहा जैसे 'हां' कहते-कहते रुककर 'ना' कर दी हो।'

'पश्चिमी नृत्य में क्या है। चार बारी देखो तो आदमी कदम के साथ कदम मिलाकर चल सकता है।'

'बड़ी छुपी रुस्तम हो। एक तो नाच के विरुद्ध और दूसरे स्वयं नृत्य करना या करने की ख्वाहिश और तमन्ना रही। तुम्हारी बनावट में कोई रहस्य जरूर है ? क्या है वह ? जी करता है पकड़ लूं।'

'अच्छा ! तो एक दिन कदम के साथ कदम मिलाकर मंच पर चलेंगे।'

'नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ?'

उसने आंख के कोने से अपने पति की ओर देखा।

'क्यों ?'

'मुझे तो आता ही नहीं।'

'चलो, अगर नहीं आता तो मैं सिखा दूंगा। मुझे एक प्रकार से इस व्यवसाय का उस्ताद माना जाता है। कई लड़कियों और स्त्रियों को यह सिखाया है। केवल सिखाने के पैसे नहीं लेता।'

यह क्या ? मैं तो इस स्त्री के साथ आगे-ही-आगे बढ़ता जा रहा हूं। इसका मतलब यह हुआ अब कभी-न-कभी इसे नाच के लिए बुलाना पड़ेगा। आखिर एक बार का बढ़ा हुआ हाथ वापस पीछे तो नहीं खींचा जा सकता। मुझे क्या हो रहा है ? कुछ नहीं। क्या होना है। चुलबुलाहट मेरा स्वभाव है। बात आयी-गयी हो जायेगी। नहीं बुलाया तो न सही। यहां कौन-सा लिखकर दे दिया है सुसरी को। और अगर वह मुकर गया तो इसने कौन-सा कचहरी में मामला दर्ज करा लेना है। इसके साथ नृत्य हुए मुझे क्या मिलेगा। पहले तो नौसिखिया है और अगर यह उठ

भी बैठी तो छाती साथ लगने से घबरायेगी। न ही इसकी छातियां इतनी रसिक हैं। गालों के साथ गालें तो यह कभी जोड़ने नहीं देगी। वैसे बेशक उसकी गालें हैं मुलायम। छोड़िये जी, भूलिये इस विषय को। लड़कियों की कमी है क्या, कि इस थकी-टूटी बूढ़ी हो रही के बारे में इतना सोचने पर मजबूर हों।

इतने में तुम्हारा रुमाल घास पर गिर पड़ा। मैं उसे उठाने के लिए झुका। तुम भी। परन्तु तुम नजदीक थी, मैं जरा दूर। हमारे हाथ टकराने ही वाले थे परन्तु टकरा न सके। बस एक-आध सेन्टीमीटर की दूरी रह गयी। मैं तुम्हारे हाथ फिर देखने के लिए मजबूर हो गया। लम्बी-पतली उंगलियां। इनका स्पर्श कैसे होगा, देखना चाहता था, चखना चाहता था। तेरे बाकी शरीर के मुकाबले में तुम्हारे हाथ आकर्षक थे।

अच्छा भई, मिला लेंगे हाथ भी यह कौन-सी बड़ी बात है? हाथ ही हाथों में लेकर देखने है, कोई सोना थोड़े ही है उसके साथ।

बारह

सचमुच ही तुम्हारे साथ हाथ मिलाने की ख्वाहिश एक मुहिम बन गयी। यह कैसी सभ्यता है, इस का मैं पारावार नहीं पा सकता। सारी दुनिया में स्त्री और मर्द हाथ मिलाते हैं, बस एक हमारे देश में ही यह गुनाह है। क्या गरमी इसका कारण है। पसीने से सराबोर हमारे हाथ किसी के साथ क्या मिलाने हैं ? लेकिन अब हमारे पास रूमाल है; पसीना पोंछा जा सकता है और फिर कभी सर्दी का भी मौसम होता है। यह पसीने के डर से यही अति सुंदर और लुभावना तौर-तरीका हम भुला बैठे हैं।

तुम स्त्रियां पुरुष के सामने अपनी औकात कैसे बढ़ाओगी ? हाथ मिलाने से तो आप लोग परहेज करती है, हिचकती है। हाथ ही दबाता है आदमी कोई तुम्हारी गालें, ओठो या छातियों को तो मुंह नहीं लगाता। पश्चिम की तरफ देखो ! जहां सूरज डूबता है, हम कहते है—वाह-वाह, कितनी मौज-बहार है। हाथ मिलाना तो क्या लोग एक-दूसरे को चूम-चूम कर स्वागत-सत्कार और विदाई करते हैं। पेरिस में एक स्त्री के साथ हर कोई हाथ मिलाना चाहे, कोई ऐसा खिचाव था उस को छूने मे। बेचारी जब किसी पार्टी पर जाती, हाथ पलास्टर मे डाल लेती। और तुम ? तुम्हारे तो वैसे ही सदा प्लास्टर में रहते हैं हाथ।

यहां तो किसी बहाने से भी स्त्री के हाथ के साथ हाथ नहीं लगाया जा सकता। मिलने और बिछुड़ने के समय वैसे न मिलना हुआ। आदमी भी कौन-सा हाथ मिलाते हैं। सदियों के अनाभाव के कारण शायद इतनी और मिठास ही नहीं छोड़ी कि किसी के साथ अच्छी तरह दबा कर

हाथ परोसा जाये। और उसके व्यक्तित्व मे से कुछ ग्रहण किया जाये और अपने व्यक्तित्व से उसे कुछ दिया जाये।

तुम्हारे साथ हाथ मिलाने के लिए मैंने कई बार बहाने गढ़े। तुम्हारे पति का हर मुलाकात के समय हाथ पकडने लगा (बेशक वह कितना ही बुरा लगता था मुझे, शिथिल, डरा हुआ उसका हाथ। मरे हुए सर्द और ठंडे हुए बांस का एक टुकड़ा था। तेरी लडकी को लाड़-लाड़ में मैं कहता—चल, लड़की, हाथ मिलाकर दिखाओ। मैंने कहा बस एक दिन मिलने या बिछुड़ने के बाद तेरी लड़की और तेरे पति से हाथ हटा कर तेरी तरफ बढ़ा दूंगा। इस प्रकार का नाटक करते हुए जैसे मैं भूल रहा हूँ। परंतु तुमने पैरों पर पानी नहीं पड़ने दिया। मैं उनसे हाथ मिलाता और तुम अलग खड़ी हो जातीं। अपनी तरफ से मैंने बड़ी कोशिश की थी परंतु तुमने मुझे विफल कर दिया।

फिर कभी जब भी तुम मेरे नजदीक होती, मैं तेरे नजदीक होने की कोशिश करता। मोटर से उतरते-चढ़ते, दरवाजे में से निकलते, कोई कुर्सी या चीज उठाते, मैं उसकी तरफ हाथ बढ़ाता परंतु क्या कमाल कि वह मौका ही न देती। मैं तुम्हारे नजदीक हुआ नही कि तुम सिकुडी नहीं। या पलक मारते ही दूर जा हटी।

फिर मैं तुम्हे हाथों की करामात के किस्से सुनाने लगा। पढ़ा-लिखा तो मैं वैसे ही काफी हूं परंतु यह ध्येय सामने रखकर कि एक-दो विशेष पुस्तकें और पढ़ डालीं। तुम्हे मालूम है हाथ कैसे बने? यह तुम जानती ही हो (उम्मीद है) कि आदमी को बंदर से आदमी बने कोई 15 लाख वर्ष लगे। पहले क्योंकि बदर पेड़ो पर रहते थे। उनको बलवान परन्तु चंचल उंगलियों की जरूरत थी। ताकि टहनियों को मजबूती के साथ पकड़ सकें। मैं उस समय के हाथों और पैरों मे कोई फर्क नही समझता और न ही तब इस प्रकार का कोई अंतर समझा ही जाता था। जब जंगल कम होने शुरु हो गये तो बदरो को पेड़ छोड़कर धरती पर विचरण करना पड़ा। यह समय हमारे इतिहास मे निर्णायक समय समझा जाता है। पैरों को टहनियां और शाखाएं आदि पकड़ने की जरूरत न रही अब उन्होंने धरती पर जानवर का भार संभालना था सो हाथो की आज की महत्ता का आरंभ

हुआ। समझी ?

और फिर उंगलियों में अंगूठा अलग हुआ यह भी एक अति आवश्यक दौर था और एक समय ऐसा आया जब हाथ मनुष्य का सबसे जरूरी अंग बन गया। ऋषि-मुनि हाथ की परछाई द्वारा कोढ़ियों के कोढ़ दूर करते थे। बुद्ध भगवान का सदा आशीर्वाद देने वाला हाथ तुमने देखा है क्या ? गुरु नानक ने पूरी की पूरी पहाड़ी को हाथ के द्वारा ही रोका। काली के कितने हाथ थे ? बताओ। पता नहीं। अभी दस थे। गणेश भगवान के भी अनेक हाथ थे। ईसाई फकीर भी हाथ की करामात जानते-मानते और समझते थे। 18वीं सदी में बेचारे लूई सोलहवें को अपनी ताज-पोशी के समय चौबीस सौ कोढ़ियों को अपने करकमलों का स्पर्श करने की छूट देनी पड़ी। ख्याल था कि शहंशाह के स्पर्श से रोग लोप हो जाते हैं।

देखो कितनी पढ़ाई और मेहनत की है मैंने तुम्हारे लिए। चलो, लाओ अब फेंको हाथ में हाथ, मुस्कराओ और चाहो तो गले भी लग जाओ।

नहीं ? कमाल की औरत हो तुम। तुम जैसी ढोलु-मटोल और चुप रहने वाली स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी। जाओ फिर दफा हो जाओ। इतनी मेहनत तो मैं हूरों और परियों के लिए भी नहीं करता। तुम ऐसे ही उठती-फिरती हो, न अक्ल न शक्ल। गाय जैसी भूखी और नाम लालपरी बे—

परंतु क्यों बेहयाही दफा करूं—तुम्हें। हर कदम पर तुम्हें जीतने दूं, बड़ी आई हो।

हर कदम तुम मेरे लिए चुनौती बना देती हो। न फिर छोड़ा जाता है और न ही पकड़ा जाता है। अच्छा, एक बार तो तुम्हें फिसलना ही पड़ेगा।

बस यारों ने सभी कुछ कर गुजरने की योजना बना डाली। अगली भेंट में हमने हाथ देखने वाले और किस्मत बताने वाले ज्योतिषी का भेष धारण किया। तुम्हारी लड़की तुम्हारे पति और तुम्हारे लड़के (वह भी उन दिनों में दिल्ली आया हुआ था) और वहां पर उपस्थित एक और थी और—फिर—मैंने तेरा हाथ खींच लिया। अब बताओ, बच्चू ?

रह गयी न हाथ मलती। हमने हाथों पर सरसों जमा दी।

अब पूछो क्या पूछती हो ? कुछ नहीं ? पूछ लो न। अगली-पिछली सब जानता हूं। लगता है तुम्हारी जिंदगी में कोई अनहोनी बात घट गयी है। ठीक है न ? साफ-साफ बता दो न ? छुपाने से क्या लाभ। यह सत्तबली सब कुछ जानता है, सब कुछ पहचानता है। तुम्हें किसी पराये मर्द में दिलचस्पी भी है। है ? शर्माती क्यू हो ? यह कोई पाप तो नहीं, लड़की! दिल तो लग ही जाया करते हैं। आदमी बेचारा क्या कर सकता है।

क्या ? क्या पूछा है ? यह तुम्हारे पति के साथ ज्यादती नहीं ? पगली, बिल्कुल नहीं। तुम्हारा यह प्रेम तुम्हें अपने पति से अलग होने के लिए थोड़े ही कहता है। अगर मन आया ही है तो थोड़ी-बहुत इश्कबाजी कर लो। अपने मन को ठिकाने पर भी रखो और संतुष्ट भी रहो। आखिर मन की मौज ही तो है जिंदगी। और क्या ! धर्म, कर्म, शास्त्रों के बारे में ? नहीं, नहीं, पगली ! यह पुराने ख्यालात हैं। जागीरदारी और सामंतवादी आज लोकतंत्र का बोलबाला है।

अगला क्या प्रश्न है ? क्या वह आदमी भी तुम्हारा प्यार तुम्हें लौटाता है ? अच्छा—इसके बारे में पक्की तरह नहीं कह सकता। क्यों ? क्योंकि यह जो तूने आदमी चुना है। यह विचित्र है। इसने तुम्हारी जैसी कई देखी हैं और फिर तुम तो सुन्दर भी नहीं। उसे जीतने के सिर्फ दो उपाय बताता हूं तुम्हें। उसकी रचनाओं में रुचि लो और उन्हें पढ़ो। वैसे भी साहित्यिक रुचियां पैदा करो। बेशक यह सब ऊटपटांग ही हो परन्तु बुद्धिजीवी और गंभीर बातचीत का घपला और दायरा बनाया करो। फिर हंसा-खेला भी करो। गंभीरता और चंचलता के मिलाप पर वह मरता है। समझी। हां, और उसे चुनौतियां न दिया करो इस मामले में। वह बड़ा तगड़ा है उसके साथ हंमना वैसे तुम्हारी खुद-किस्मती की निशानी है।

ठीक ! खुश हो न। देखो कितना कुछ बताया है तुम्हें बिना तुमसे कुछ जाने।

तुम्हारा हाथ मैंने पकड़ा परन्तु तुम अगर सच पूछो तो कोई मजा नहीं आया। मैं अपनी विजय पर इतना फूला कि मजा लेना ही भूल गया।

साथ ही तुम्हारे मुह पर एक रंग आ रहा था और दूसरा जा रहा था, मैं डरा कि कहीं तुम्हारी हृदय-गति न रुक जाये।

ऐसे और ऐसे ही और किस्से अगर समझो तो सब कुछ ही हैं और यह बातें मैं अपनी पत्रकार सहेली को बताया करता था। हम अक्सर मिलते थे। मैं जानता हूं कि स्त्री के साथ कभी किसी दूसरी स्त्री की बातें नहीं करनी चाहिए। परन्तु मेरी पत्रकार केवल स्त्री ही नहीं थी मेरे लिए। यदि स्त्री की भांति वह मेरे साथ सोती है तो मुझे प्यार भी करती थी। और वह मेरी एक मित्र भी थी, हां, मेरी सबसे करीबी मित्र, कम से कम उस समय। अगर मैं उसके साथ ऐसी घटनाओं का आदान-प्रदान न करता, और किसे ढूंढता। वह भी तो मुझे अपनी सभी कठिनाइयां बता देती थी।

लेकिन उसके दिल में एक शंका थी जिससे मैं परिचित था। मुझे कहती—

'चलो कहीं चलें बम्बई चलते हैं। तुम्हें भी और मुझे भी छुट्टी की जरूरत है— कश्मीर चलें। बर्फ में एक-दूसरे के करीब की गरमी का मजा लें। याद है वह हाउसबोट जिसमें हम पिछले साल ठहरे थे? मुनीम उसकी मुनि-मुनि और उसके बच्चे ने हमें मुफ्त रखने का वचन दिया था और हम भी उनसे वादा कर आये थे। बर्फ के ढेले बना-बना कर एक-दूसरे को मारेंगे—चलो, विदेश चलें। मेरा पासपोर्ट बन गया है। आप हजारों चक्कर लगा आये हैं। क्या अपनी प्रेमिका को एक बार भी नहीं ले जायेंगे?'

मैं कहता—

'मैं तुम्हारी लगी समझता हूं। तुम फिकर मत करो। अब मेरे पैर पक्के हैं तुम्हारी कृपा से। अब मैं नहीं फिसलता। अगर तुम न होती तो अब तक कुछ न कुछ हो जाता। मैं सब लाभ-हानि पहचानता हूं और तुम्हारे साथ अपना रिश्ता भी—बस! देखो ना, मुझसे हार नहीं सही जाती। अगर कोई चुनौती दे तो कमर कसकर उसे पछाड़ने की सोच लेता हूं। सैनिक न बाप था न दादा, न हमने कभी चाकू के साथ उंगलियां ही काटी हैं। परन्तु फिर भी जूझने के लिए तत्परता है—दिमाग़ी झूझ। खून

नहीं बहता ना (वह हंसी—) कभी-कभी उसका भूत जानने की इच्छा होती। किन घटनाओं ने उसे यह वर्तमान रूप दिया था। नृत्य की इच्छा लेकिन उसकी गुलामी नहीं। क्लबों में घूमने की उत्तेजना परन्तु बदतमीजी नहीं अजीब बात है। आदमी के साथ प्रेम जरा भी नहीं परन्तु वफादारी गजब की। न ही अपने मां-बाप से और न ही अपने ससुराल वालों से मेल-मिलाप। विचित्र लक्षण हैं। केवल एक ही घटना जानता हूं। उसकी बहन दरवाजे की ठोकर खाकर उसकी आंखों के सामने मर गयी—परन्तु और भी कुछ जरूर है। कई और घटनाओं का तालमेल है। बस—शायद एक लेखक के तौर वह उत्सुकता है, उपन्यास गढ़ने का एक अनोखा तरीका परन्तु उपन्यास का क्या है। जितना जान लिया उतना ही काफी है बाकी खुद गढ़ा जा सकता है। मैं उपन्यास जीवन में से नहीं लेता, उपन्यासों द्वारा जीवन गढ़ता हूं।

तुम महान हो, मेरे नायक! और सर्वशक्तिमान का तुम्हारे सिर पर हमेशा हाथ रहे—तुम!

मैं हंसा।

आज सर्वशक्तिमान कैसे याद आ गया।

जब मन डोले तो याद आ ही जाता है। अभी तक इसकी जरूरत ही महसूस नहीं हुई थी—

और शायद पड़े भी नहीं। आत्मविश्वास दृढ़ रखो, मेरी चंद्रिका।

तेरह

आज रात हम फिर इकट्ठे लेटे हुए थे। एक साल बीत गया था। नया साल आया था। पिछले साल की रात और नये साल की सुबह हमने इकट्ठी ही बितायी थी। (सालों का क्या होता है? आदमी के लिए अपने आप को भूलने का बहाना चाहिए कैसे-न-कैसे अपना अस्तित्व मिट जाय और कोई और बनकर जीवित होकर आ जाये। यही है मनुष्य, यही उसकी आत्मा चाहती है। परन्तु अफसोस, यह संभव नहीं। जो जून भोगने की सजा मिली है उसे भोगना ही पड़ेगा दोस्त!) पिछले साल और उससे पिछले भी हम इकट्ठे ही थे।

आखिर जनवरी की सर्दी, दीवारों, किवाड़ों और बिस्तरों से हड्डियों तक पहुंच रही थी। मेरी प्रेमिका सर्दी का बहुत अनुभव करती थी। ऐसे ही ठर-ठर करती खिड़की गर्मियों में भी एयरकंडीशनर लगाओ तो उसे काम कर देती। मेरी प्रिय, अति प्रिय! आज वह रजाई ऊपर ही ऊपर तानती जा रही थी। जब मैंने उसके—या किसी स्त्री के साथ— बिस्तरे में हूं तो मुझे कपड़े काटने को दौड़ते हैं। भई, कपड़े तो घूमने-फिरने और सभ्य कार्य-कलापों के लिए होते हैं। जब आदमी बिस्तर में हो तो वह तहजीब-याफ्ता जानवर थोड़ा गिना जा सकता है। तब तो एक आम जानवर की तरह ही है। और कौन-सा आम या जंगली जानवर कपड़े फाड़-फाड़ नहीं फेंकेगा? देखो मेरी मजबूर! वस्त्र पहने [illegible] और शालीन शब्द से सभ्य मनुष्य औ[illegible]

एक हीटर कमरे में पहले ही लग रहा था। मैं उठा और दूसरे कमरे में से एक और हीटर लाकर जलाया। कमरा गर्म हो गया और अब उसे रजाई में गर्मी लगने लगी।

एकाएक पता नही उसके मन मे क्या आया कि बेहताशा वह मेरी छाती के बालों पर हाथ फेरने लगी।। बाल मेरे तोडने लगी दर्द हो रही थी। मैंने कहा तो कुछ नही और न ही सी की परन्तु दोनों हाथों के साथ उसकी गालों को पकड़ा। फिर अपना मुह उठाकर वह मुझे चूमने लगी। पहले छाती पर, फिर गर्दन, फिर गालों और फिर ओठों को। जब थक गयी तो अधमुंदी-सी होकर अपना मुंह मेरी छाती पर रख दिया। शरीर उसका इतना ढीला हो गया था जैसे उसमे जान तक न रही हो।

मैंने उसकी गालों, गर्दन, कान के बालों को धीरे-धीरे प्यार किया। सचमुच ही उसके शरीर में अब वह पहले वाला यौवन नही रह गया था। मैंने उसे हिलाया-डुलाया। कान से पकडकर ऊंचा किया।

'क्या बात है डियर?' उसने कुछ पल तक मेरी तरफ टकटकी लगा कर देखते हुए पूछा—

'जीवित और अजीवित शरीर मे क्या फर्क है?'

गहरा ज्ञान भरा वाद-विवाद हमारी कमजोरी थी। परन्तु आज मैं कुछ डर-सा गया।

'क्या बात है डार्लिंग! बड़ी खोई-खोई-सी हो।'

'लगता है कुछ खो रही हूं, खोई-खोई न रहूं तो क्या करूं।'

मैंने ठंडी सास ली।

'नही, तुमने कुछ नही खोया। और···'

अब उसने गहरी सास ली। वह उठी। उसने अपना सिर झंझोड़ा और मुस्करायी।

'अच्छा कुछ, नहीं खो रही थी परन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर?'

'जीवित और अजीवित शरीर···'

मैं रुका यह कोई नयी बात थी। लगता था कि वह इस प्रश्न से मुझे किसी तरह फंसाना चाहती है।

'मैं बताऊं···?'

वह मेरे से जरा-सी दूर हट गयी ताकि मेरी आंखों में अपनी आंखें डाल सके। एकटक उसने मेरी तरफ देखा। फिर वह जरा सहमी और उसने दीवार का ढासना ले लिया। घुटने अपनी ठोडी के नीचे जोड़े और हाथों में पिंडलियों को इकट्ठा किया। वैसे ही वह सुन्दर थी, इस पोज में वह और सुन्दर लगी। किस प्रकार का सौंदर्य था उसका? क्या बताऊं और कैसे बयान करूं? सौंदर्य की परिभाषा क्या है? इसका कैसे वर्णन और विवेचन किया जा सकता है?

हां, बता सकता हूं कि वह कैसे लगती थी। ऐसे! अल्पाकार थी वह! नाक पतला और नुकीला, हाथ पतले और नुकीले, पैर, पैरों की उंगलियां, उंगलियों के नाखून पतले और नुकीले, सारे शरीर की बनावट ही अलग-अलग और नुकीली। माथा भी जैसे बालों की बनावट की तरह सिमटता जाता। हां, छातियां जरा छोटी थीं। बाल उसके मखियार फैशन के, मतलब कि सिर पर शहद के मक्खे की तरह- फूले-फूले, फैले-फैले। अल्पक अंगों के सामने बालों का मखियार कुछ अटपटा-सा लगता। लेकिन बावजूद इसके उसके शरीर और उसकी जात के लिए एक उमंग एक ललक-सी उठती। उसको आलिंगन में लेने का जी करता। बारिश आये, अंधेरी हो, सर्दी हो, गर्मी, दिन हो या रात, काम हो या आराम, बाल उसके मखियार। पहले-पहले मुझे यह जंचे नहीं परन्तु जल्दी ही ऐसे लगने लगा कि अगर उसने ऐसे बाल न बनाये तो यह कोई और ही हो जायेगी। यह बाल उसके व्यक्तित्व और निखार का भाग थे। यह बाल वह थी वह खुद।

ठोड़ी के नीचे पालथी मारे और घुटनों के आस-पास हाथों की जंजीर बनाये वह मेरी तरफ देखती गयी।

बंदरी!

मैंने यह कहा तो उठकर उसके पैरों, उसके घुटनों के हाथों को चूमा। मुग्ध दृष्टि से वह मेरी तरफ देखती रही।

मानिये बंदरी...

मैंने दोहराया, मान जा न बंदरी।

आपके साथ कौन नाराज हो सकता है, मेरे प्रियतम!

काश ! मरने से पहले मैं तुम्हारे मुंह से आप और तुम्हारे की जगह तू और तेरा सुन सकूं।

कितनी बार मैंने उसे कहा था कि 'आपका' यह बुर्जुआ चिह्न या शब्द समाप्त करो। सीधी तरह बुलाया करो। तुम कोई मेरी पत्नी थोड़े हो हो ? मित्र हो। वह मानती परन्तु कहती पता नहीं 'तुम' कहते-कहते कैसे 'आप' बन जाता है। कहती कि शायद उसके ओंठो और दातो में कोई कमी है। मैं कहता कि नहीं तुम्हारे भेजे में कोई कमी है। कहती :

आप फिक्र न करें आपको 'आप' कह कर मैं अपना नाम भी पति तसव्वर करती हूं और न ही पत्नी बनने के लिए वर्गलाती ही हूं। कैसे हूं, जैसे भी हूं। मुझे जीवन में इतना रस मिला है, वह क्या कम है ? मैं और कुछ नहीं चाहती।

स्वाभाविक तौर पर और हंसी-हसी मे बातें करती वह कभी-कभी अधिक अधीर हो जाती और कोई ऐसा वाक्य बोल जाती कि मेरी काया तड़प उठती। मुझे याद है उपन्यास और उपन्यास की रचना के बारे में चर्चा करते-करते एक दिन उसने कहा :

कहीं मेरी जिन्दगी का ऊंट-पटांग उपन्यास न गढ़ दीजियेगा ? यह उपन्यास अगर कभी लिखने योग्य हुआ तो लेखक को जला देगा और पाठक को सड़ा देगा। हैरानी है कि लाखों साल की इतनी उन्नति के बाद भी मनुष्य अपनी आपबीती और अपने जज्बातों का कागज पर सही तर्जमानी करने में असमर्थ है।

तुमने सुना और समझा प्रिये ! मैंने सुना और समझा। यदि मुझे शक्ति मिलती रही तो आखिरी उपन्यास यही होगा जिसके बाद जलती हुई चिता मे जा बिराजूगा ।

मैं सोच रहा था और वह मेरे मुंह पर उठते उतार-चढ़ाव देखे जा रही थी।

मेरे प्रश्न का उत्तर ? अभी तक भूली नही क्या ? मेरे प्यारे, शरीर तो शरीर ही रहता है चाहे वह जीवित हो, चाहे मुर्दा। बीच में से रूह उड़ जाती है। रूह या जो कुछ मरजी है उस वस्तु को निश्चित कीजिए। वह वस्तु उड़ी तो यह लोथ बनी•••

मैं उसकी तरफ देखे जाता···कोई देव-तुल्य वानी वह किये जा रही थी।

ऐसे ही जिस शरीर में से प्यार उड़ जाये वह शरीर लोथ बन जाती है जाति मसला खत्म हो जाता है। मैं भाषण नहीं दे रही और न ही उपन्यास ही रच रही हूं। जिस शरीर के पैरों के नाखूनों को चूमा हो, जिस शरीर का पसीना अमृत रहा हो, जिस शरीर का टट्टी-पेशाब भी पुनीत और पवित्र जाना गया हो, जब उस शरीर से अपनत्व के लिए प्यार गया तो उस शरीर की लुभावनापन, बुद्धि और महानता लोप होती है।

डियर !

मैंने पुकारा।

मेरे प्रियतम।

वह बोली।

अगर हम एक-दूसरे में समा गये, शरीर हमारे एक-दूसरे में अंकित और मूर्तिमान हो गये। शरीर की लोथें ? नेत्र हमारे बंद-बंद कि अंधे ?

मैंने अंधे नेत्रों से उसे देखा। अपना उसका दुनिया का, दुनियादारी का और खंड ब्रह्माड का संपूर्ण अंत। जहां-जहां भी कोई जीव था वह लोथ बनती गयी। सांस; रूह या चलती-फिरती कोई वस्तु पिघलती गयी। हरकत खत्म होती गयी। गाड़ियां, विमान, जहाज, मोटरें, तांगे सब रुक गये। सारी दुनिया पक्षियों और जानवरों के समेत वस्तु-विहीन धरती पर बिछ गयी थी और फिर मैंने क्या देखा कि पृथ्वी की चाल में भी कोई बाधा पैदा हो गयी है। उसकी गति कमतर होती जा रही है। हां, बड़ी तेजी के साथ उसकी रफ्तार कम हो रही थी। जब धरती इतनी धीमे घूम रही थी कि मैं उसका चक्र-चक्र गिन सकता था। और अंत में पृथ्वी की चाल भी रुक गयी। समूह, सर्वशून्य, सुनसान और फिर जैसे किसी अदृश्य शक्ति ने उंगलियों में कोई बटन दबाया हो और सूर्य की रोशनी मद्धिम होने लगी···पश्चिम होती चली गयी···होती गयी और बुझ गयी, अरबद-नरबद संधुकारा।

चौदह

अब मुझे अनुभव करते देर न लगी कि मैं अपनी पड़ोसन मद्रासन से प्रेम करता था। कभी प्यार ऐसे भी हो सकता है, इस बात का मुझे कभी गुमान नहीं था, न ही अनुभव और न ही कभी किसी किस्से-कहानी, उपन्यास में ही सुना था। मैं नीलाम हो रहा था और नीलाम हो रही निर्जीव या बेजुबान वस्तु या जानवर की तरह अज्ञान रहा। गया···गया···दो···कई बार ऐसे शब्द दिमाग में पड़ते और नीलामी दृश्य सामने आ जाता। परंतु मन में एक और ही शोर मचा कि मैं इस नीलामी की लड़ी का तीसरा शब्द न सुनता। यह अनोखी नीलामी थी और बोली वाले ने इतनी जोर से घंटा बजाया कि मेरा कल्पित मन चुप था और मैंने सुना, गया···गया···(और फिर तीसरी बार) गया। एक···दो···(और फिर अंतिम शब्द) तीन। मैं बिक गया, नीलाम हो गया।

मुझे प्रेम से घृणा है। घिनौना यह शब्द ! घिनौनी यह भावना ! घिनौना ही इस शब्द या जज्बात को छूना या बतियाना, और इसके अधीन हो जाना। प्रेम की अधीनगी में मनुष्य का मूल्य, कौड़ी समान हो जाता है। नीलामी हुई तो भूसे के भाव सोना बिक गया। प्रेम मनुष्य के आत्मसम्मान का प्रतीक है। प्यार में ऐसे मनुष्य किसी के पैरों में लोटपोट होता है और इस प्रकार की किलकारियां मारता है कि दूसरा पक्ष कहता है—छी-छी भिखमंगा, दुरदुर कुत्ता। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि दो जीव एक-दूसरे के प्रेम का आदान-प्रदान करते हैं। यदि अन्तर है तो सिर्फ इतना कि एक नहीं बल्कि दोनों ही छी-छी भिखमंगे हैं और दुरदुर कुत्ते।

दूसरे के सामने लोटते फिरते हैं। गालें फेंकते फिरते रहते हैं। अगर उस समय अहंकार जागता भी है तो दूसरे पल सिमट जाता है। प्यार के इस शक्तिशाली परन्तु मलीन बलबले के सामने कोई आत्मचिंतन और आत्म-चैतन्य कार्य करने का साहस नही कर सकता।

इसीलिए तो मैं कहता हू कि सच्चा प्रेम (?) केवल भीतरी सच्चाई के साथ सर्वव्यापी या सर्वव्यापकता के साथ अदृश्य वस्तु के साथ संभव है। उसके सामने अहंकार का मरना विजय है, इंसान के आगे अहंकार को मारना पराजय। गुरुद्वारों में संगत जोड़े (जूते) झाड़ती है तो पुण्य समझा जाता है, इंसान के जोड़ों को हाथ लगाना पाप। भीतर ही भीतर अपने आपको कोसते जाना और यह समझना जैसे वह कह रहा है और फिर भी झुकते जाना मिट्टी के साथ--मिट्टी हो जाना यह महानता है। परन्तु किसी इंसान से ऊंचा कहलवाना भी निरादर। बस उसके पैरों पर गिरे तो इस संसार का कोई भी प्राणी, कोई भी अधिकारी, कोई भी बादशाह, कोई भी अफसर आखों के नीचे नही टिकेगा। एक अह मरा, एक अहं जन्मा।

आध्यात्मिक विश्लेपण तो मैं हजार करता हूं परंतु सच पूछो तो मैं इस परमार्थी पद पर चलने मे खोखला हूं। उसके सामने मैंने अहकार मारने का कभी कोई प्रयास ही नही किया और दुनियावी अहंकार टें की टीसी होती है। हे भगवान, किसी को खाते-पीते घर मे पैदा न करना। उजड्ड अमीरों के घर पैदा होना, गरीबों के घर पैदा होने के समान है। परन्तु सभ्य बुद्धिमान बचपन मनुष्य के भविष्य के लिए अत्यंत हानिकारक है। आस-पास के जिस वातावरण में दुनियावी अहं की टें किसी को भी आंखों तले नही टिकाती और इसीलिए उसके व्यक्तित्व के लिए विनाशकारी है।

इसी असाधारण परवरिश और विकास के कारण मैं प्रेम करने की साधारण हिमाकत कभी नही कर सका। कहा करता था कि मुझे अपनी पत्नी से प्रेम है परन्तु यह प्यार शब्द और प्यार जज्बात की गलत व्याख्या है। कोई प्यार वगैरह नही था। मैं उसे गुरुद्वारे देखता, फिर लुक-छुप कर फिर रौब-दाब से और फिर मैंने अपने पिता से कहकर उसके बाप को

शादी के लिए मनवा लिया। मनवा क्या लिया वे तो हमारे इशारे पर घुटने रगड़ते हुए आये। वह अपनी चढ़ती जवानी में मुझे सुन्दर लगी, औरों से अधिक सुन्दर। कुछ चुलबुली थी बस दिल आ गया जिसमें लिंग-संतोष का हिस्सा अधिक था। लायलपुर में और कोई मुझे जंची नहीं और भारतवर्ष का जन्मा-पला युवक नया-नया यूरोप जाकर तो मेले पर गये जाट की तरह ही होता है। वहां का जीवन और सभ्यता उसके लिए पहेली ही रहती है। पूर्ण संस्कृति का मान राजनीतिक गुलामी और पिछड़ापन, लिंग से घबरा-घबरा जाने के बुनियादी संस्कार और उनका आपके प्रति एक चिड़ियाघर छुटकारा पाये और कच्चा मांस खाने की अभी-अभी आदत छोड़े एक मानव जानवर वाला बर्ताव, आपको भारत में छोड़ी अपनी सुंदर, सुघड़, सहज पत्नी के प्रति वफादार बनाये रखने पर मजबूर कर देता है। कोई सनकी ही ऐसे संस्कारों से ऊपर उठकर सोच सकता है और मैं सनकी नहीं। हां, जब आप वहां जाकर रहें, बसें तो आप का बौद्धिक स्तर किसी पाये तक जा पहुंचे तो और स्थिति है।

फिर खुशकिस्मती यह कि पत्नी से अलग होना पड़ा। रोज की टांय-टांय से जान छूटी। रोज की खिचा-खिची मनुष्य की वास्तविक बुद्धिमत्ता और बुद्धिजीवी बनने में एक दीवार है। अलावा इसके, मेरे छोटे भाई ने मुझे बिना किसी काम पर लगाये या काम बताये श्रम के साधन से मुक्त रखा। अब आप ही बताइये कि सांसारिक अहंकार से मेरी मति क्यों न भ्रष्ट होती। और फिर क्यूं न मेरी मति फिरे, किसी का लेकर खाता हूं क्या? किसी की डकैती की है क्या?

सो ऐसा आदमी जब नीलाम हो तो यह कोई मजाक नहीं। तड़पन, तपन, खपन, सड़न, जलन का कोई खास अनुभव नहीं। मित्र प्यारे, मैं क्या करूं। उसके प्यार में अब मुझे तड़पना और जलना पड़ रहा है। सारे पूर्व और सारे पश्चिम की सुन्दर से सुन्दर लड़कियों को आंख मारी नहीं कि वे मुस्करायी नहीं। परन्तु यह एक ऐसी स्त्री है जिसे मुस्कराना ही नहीं आता।

या तो वह मुझे प्यार न करे तो जुदा बात है। प्यार मुझे वह जरूर करती है। याद नहीं मुझे कि वह मूक प्रश्न, जो उसने मुझसे पूछे, जब मैं

उसका हाथ पकड़ रहा था ? और कैसे देखती थी तब वह मेरी तरफ अपने नयनों के कोनो से ? यदि अपने आपको मेरे प्रेम मे गहरी तरह उतारने की चाहवान नही थी तो क्यो जिमखानों में बैठकर अपनी मजबूरी की कहानियां छेड़ बैठी। वह मुझे कह रही थी :

'समझ लो मेरे दिल मे क्या है परन्तु मैं खुद बता नहीं सकती। मेरी मजबूरियां है। मेरे सस्कार हैं, मेरा लालन-पालन है। तुम जैसा खुले स्वभाव का और सफेदपोशी दृष्टिकोण नही। हमारे समाज में पराये मर्द से बस प्यार करना है, उसका इजहार करना नही। जान दे सकती हूं परन्तु उंगलियों के साथ उंगलियां नहीं छूने दे सकती। तेरे इश्क में घुल-घुल कर मर सकती हूं, परन्तु तुम्हारे साथ मुस्करा नहीं सकती। क्या ? तुम्हें यह पसन्द नहीं। तुम मेरी मुस्कानों, मेरे शरीर को स्पर्श करने को लालायित हो। हां, मैं जानती हू परन्तु'''परन्तु मैं मजबूर हूं।'

'अगर तुम मजबूर हो सुन्दरी, तो मैं भी मजबूर हूं। अगर तुम्हारी सभ्यता है तो मेरी भी है। मैं तुम्हे छू के छोड़ूंगा, दबा के छोड़ूंगा, चूम के छोड़ूंगा और'''। यह भी कोई रास्ता है अगले को तरसाने का जो इस बीसवी सदी के दूसरे मध्य में नहीं जमता।'

परंतु फिर मन कहता :

पगले अगर प्यार है तो प्यार में झुक कर देख। दुनियावी और हकीकी इश्क मे कोई भिन्नता नही। जब प्रेम का आवेश हो तो मनुष्य भगवान बन जाता है।

ऐं, मनुष्य भगवान बन सकता है परन्तु यारों ने तो कभी भगवान की परवाह नही की, उसके नितम्बो पर भी ठोकर मारी है परवाह तो हमारी भगवान ने की है। ऐसे संयोग बनाये हैं कि न कभी रोटी की चिन्ता रही और न किसी और चीज की। भारत-पाकिस्तान के विभाजन के समय खून-खराबे के बाद भी उसने पैरों पर खड़ा कर दिया। सो जो कुछ आप चाहते हैं वह मुश्किल है। हमारे बस का रोग नहीं।

क्या करोगे फिर ?

क्या करना है, देखेंगे।

पहले तो अब उसको आकर्षक मुख के बारे मे ही-सोचने से फुर्सत नहीं

मिलती। तंग आया हुआ था मैं सफेद और गोरी लड़कियों से। असली रंग, रंग गेहुंआ। सिर्फ अनुभव करने की चाह नहीं। वास्तव में इस रंग में अपना एक आकर्षण है और फिर उसके मुख का आकर्षण? आधुनिक नवीन चित्र! आजकल सुन्दरता, संघर्ष, असमानता, अतुल्य में बसती है न कि समतुल्य में समानता में। तुम्हारे नाक, गालें, ओठ, ठोडी, कानों पर रेखाएं, इन सभी अंगों की असमानता ही तुम्हें खूबसूरत बनाती है। लोगों की तो आखें ही नहीं। वे अंधे हैं, बुर्जुआ हैं। वह तुम्हारी भीतरी खूबसूरती पहचान ही नहीं पाते।

पल-पल तुम्हारा मुख सामने आता है, पल-पल तुम्हारे हाथ, तुम्हारा शरीर दिमाग में झुनझुनी छेड़ते हैं। कभी तो इन्हें छूने का सौभाग्य मिलेगा, कभी तो तुम्हारे करीब जगह मिलेगी ही सुन्दरी! हां, सुन्दरियों, मैं सुन्दरी, मैं तुम्हें प्यार'''प्यार करता हूं।

पन्द्रह

वे भी रातें थीं और यह भी रातें हैं।

तब जब मैं अपने चौड़े पलंग पर लेटता तो मैं इस विशाल ब्रह्मांड का एक महत्त्वपूर्ण जुज होता। देश-विदेश, आकाश-पाताल का ज्ञान मेरे मस्तिष्क में घूम रहा होता, कभी मैं पेरिस, कभी लन्दन, कभी न्यूयार्क, कभी लासएंजलीस, कभी टोक्यो। मैं धरती को घूमते हुए प्रत्यक्ष देख सकता। चार लाख किलोमीटर दूर मैं चन्द्रमा पर विचरण करता। मंगल, बृहस्पति, वीनस और यूरेनस भी उड जाते। वाह-वाह चाद पर घूमती धरती को देखने की बहार! बड़ी दुरबीन के साथ मैं भारत और पाकिस्तान पहचान सकता था। और मैं कहता—यह मेरा-जन्म स्थान है—लायलपुर।

कभी लेटे-लेटे गुरु नानक या गुरु अर्जुन की वाणी का कोई पद जबान पर घूमने लगता और कभी मैं सारा पाठ ही मन ही मन गुनगुना देता। कभी बांका गुरु गोविन्द सिंह अपने नीले घोड़े और सफेद बाजों के साथ लहरता, खेलता, मुस्कराता, तीर खींचता, शमशीर निकालता मेरे नयनों के सामने निकल जाता और मैं ओंठों में ही उसकी स्तुति करता और वाणी विचारता। इस दौर में बहते-बहते फिर मुझे भगवान कृष्ण अपने साथ वृंदावन ले जाते और कहते: 'कल आओ तुम्हें इस जगत में परलोक की सैर कराऊं।' कभी कृष्ण के साथ मैं महाभारत का युद्ध लड़ता, अर्जुन और दुर्योधन के साथ वाद-विवाद करता (लड़ाई के ढंग कितने बदल गये हैं) फिर सूली पर टंगे ईसा मसीह मुझे पल ही पल के लिए उदास कर देता

परन्तु जब वह संजीदा और दृढ़ मुझे कहता : सूली चढ़कर मैं अमर हो गया हूं ताकि तुम लोग भी सभी अमर हो जाओ। या हो जाने की आशा कर सको। तो मैं भी दृढ़चित्त होकर दुनिया के सिद्धान्तों और उसूलों के लिए जूझने की हिम्मत अपने आप में अनुभव करता। (धर्मों और पैगम्बरों के नाम मैंने इसलिए नहीं गिनाये कि मैं 'हिन्दू-मुसलमान-सिख-ईसाई; और यह सभी हैं भाई-भाई' के फीके नारे का समर्थन करूं। नहीं, यह सब व्यक्तित्व वास्तव में विस्तरे पर लेटे मेरे सामने आती।)

कृष्ण और ईसा के बारे में सोचते हुए सहज ही मे तब और अब का तुलनात्मक रूप सामने आ जाता है। वह उन्नति जो मनुष्य ने की इस समूचे विकास की कड़ियां और पड़ाव धर्म के लिए अधर्म की इन्तहां और अधर्म के लिए धर्म का बलिदान ! धर्म से दार्शनिकता की तरफ आता वेदान्त और वेदान्त की व्याख्या करते अनेक टीका-टिप्पणिया। हमारे दर्शन के छह चरण—महात्मा बुद्ध का अष्ट-पथ, उच्च विश्वास, उच्च अभिव्यक्ति, उच्च विचार, उच्च संस्कार, आदि शंकराचार्य और उसके मठ प्लेटो, अरस्तु, सुकरात, सोफीनियोर, रूसो, हीगल, बरक्सन। (पिछली बार यूरोप गया तो रूसो का जन्म-स्थान देखा।) दार्शनिकता और साहित्य पड़ोसी हैं लिहाजा जिन लेखकों और कवियों ने मेरे व्यक्तित्व पर प्रभाव डाला उनके नाम, उनकी रचनाएं सोये-सोये याद आती है। शकुन्तला से बढ़कर कालिदास का 'विक्रमोर्वशीयम्' क्योंकि शायद कभी यह कोर्स में पढ़ा था। होमर, टाल्सटाय, विक्टर ह्यूगो, टैगोर, शरद् चन्द्र, डिकन्स, बोदलेयर, विटमैन, खलील जिब्रान (मेरे ज्ञान से प्रभावित हुए कि नहीं ?)।

अपने चौड़े पलंग पर रात को सोने के लिए लेटना मेरे लिए एक रोचक समय होता। कभी कोई किसी समारोह में मेरे गले मे हार पड़ रहा होता (काफी नाम कमाया है ?) कभी किसी अन्तर्राष्ट्रीय बैठक मे गरमा-गरम बहस कर रहा होता। आज प्रशंसकों के पत्रों की फाइलें पलटने का जी करता। नहीं, आज नही कल, यह पलंग कौन छोडे। वे लडकियां और औरतें जिनको मैंने आकर्षित किया···किसी के साथ सिर्फ दिल्लगी, किसी के साथ हाथ-मिलाई, किसी के साथ चुम्मन, किसी के साथ भोग। कोई

बनी-ठनी सजी-सवरी मेरे साथ किसी क्लब में नाच रही है। कोई धीरे-धीरे और एक-एक करके अपने वस्त्र उतार रही है और तह करके रख रही है। मैं सोचता हूं : 'इस समय इसकी क्या जरूरत है ? जल्दी करो मैं तिलमिला रहा हूं।' कोई अधढकी ही बिस्तरे में घुसने को दौड़ती है तो मैं लौटा देता हूं; यह भी कोई तरीका है बिस्तरे में पड़ने का ? आह ! यह कैसी विचित्र शारीरिक बनावट है। आह ! यह कैसी उभरी हुई छातियां हैं।

सुन्दरता तो है परन्तु कुरूपता कौन-सी कम है। यह सात-रिंग रोड पर मजदूरों की झोंपड़ियां। चार अदद ईंटें जिसके लिए चोरी का इल्जाम। चार बांस के टुकड़े जिनके लिए मीलों का सफर परन्तु महलों और कोठी वालों के लिए यह भी भार हैं। ऐसे घृणित नमूने उनकी आंखों को काटते है—इनको हटा दो, जला दो। अच्छा ! इनको हटा और जला दें, तो फिर अमीरों के महलों और कोठियों की दीवारें क्यों साबुत रहें ?

गरीब, अनाथ, भूखे, बिलबिलाते बच्चे भारत में और अन्य पूर्वी देशों मे। वीएतनाम में लूले-लंगड़े और अन्धे पैदा होते बच्चे। मध्य यूरोप मे जंगी अमन। पिछले दो विश्व-युद्ध और वर्तमान परमाणु बमों के खजाने ! (बस यही विकास है मानवता का !) अफ्रीका और अमेरिका के हब्शी—काली शक्ति।

वाह-वाह, कैसे बाजार भरे हैं रौनक है, झाड़-फानूस के प्रकाश मे नैन चौंधिया रहे है। बाजार भी भरे है और दुकानें भी भरी हैं। कपड़ो की दुकानें, कहवाघर, रेस्तरां, मिठाइयों और चाकलेटों के बाजार हैं परन्तु··· परन्तु मैं भूखा और अधनगा इस बाजार के बीच से निकल रहा हूं। मेरी भूख और मेरी नंगेज को दूर करने मे असमर्थ है यह सजा-संवरा बाजार। मैं नंगा और भूखा ही मर जाऊंगा परन्तु यह बाजार भरा रहेगा। मरो या जियो हमे क्या ?

भारी-भरकम पलग पर लेटना एक बडे विशाल अजायबघर में विचरण करने के समान है। परन्तु सरकारी अजायबघर नही, अजायबघर मेरा अपना, निजी। कभी कोई अजूबा उठाकर झाड़-पोंछ रहा था, कभी ि चीज की प्रशंसा कर रहा हूं तो कभी अदल-बदल कर उलटा-फिरा

कर देखता हूं। अजायबघर भी और पुस्तकालय भी। कभी कोई पुस्तक उठाकर झाड़ता हूं, कभी किसी में पड़ी निशानी खींचता हूं। लाइब्रेरी भी तो अनुसंधानशाला है। एक दराज खींचता हूं तो अपनी पत्नी की लिखी कुछ चिट्ठियां हैं। दूसरे दराज में रूस-यात्रा के चित्र हैं। एक फाइल में सिर्फ इतिहास से सम्बन्धित ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के समय इकट्ठी की गयी सामग्री है आह। और देखो इसमें से क्या निकला? उस जर्मन लड़की की चिट्ठियां जिसे मैंने धोखा दिया और यह क्या है? बड़ा सम्भाल-सम्भाल कर रखा हुआ है? हां, यह चीज ही सम्भालने योग्य है। कोढ़ के समय हजारों को मार सकता हूं। कैसे? देखिए तो सही खुद ही जान जायेंगे। देखो यह महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, राधा कृष्णन, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बर्ट्रेंड रसेल, या पॉल सार्त्रे, द गाल, विंसटन चर्चिल, ख्रुश्चेव, आन्द्रे मलरो, जान कैनेडी के पत्र (रह गया है वर्तमान सदी का कोई और श्रेष्ठ महान पुरुष?) और भी हैं जरा देखो तो सही। और इस आकर्षक जिल्द में समाये हैं कई महान व्यक्तियों के हस्ताक्षर।

इस पलंग पर लेटे ही मैंने अपने सब महान उपन्यासों की रचना की। यहां ही मैंने अपने पात्रों के नक्श गढ़े और उनकी दलीलों को खींचा। अनेक पात्र, अद्भुत पात्र, चोर-डाकू पात्र, खूंखार पात्र (जिनसे मुझे खुद भी डर लगता) विनम्र, सुगम पात्र (जिनके लिए मैं खुद सब कुछ करने के लिए तैयार), अपने दुखान्त पात्र (जिनके लिए वास्तव में मैं रोया) और प्रधान पात्र, सहायक पात्र, अल्प पात्र, छाया पात्र, मध्यम पात्र, गोले पात्र...

मैं आप ही अपनी प्रतिभा पर हैरान हुआ करता था। मुझे सदा ऐसा लगता कि मैं किसी न किसी महान और उत्कृष्ट घटना के किनारे खड़ा हूं।

सुनती हो सुन्दरी, कैसी रातें होती थी वे जब तुम भद्दी, बेशक्ल, मुखौटे वाली थी? और आज तेरे सुन्दर मुखड़े ने इन रातों की क्या हालत कर दी है। आज तेरी मुहब्बत ने क्या-क्या सितम ढाये हैं? जानती हो?

सारी पढ़ाई-लिखाई, गहन-ज्ञान और बुद्धिमत्ता पर पानी फिर गया है। हां, पानी की बाढ़ आ गयी है। बुद्धि और ज्ञान की विशाल

आकाश उसके नीचे डूब गये हैं। समझो सारा ज्ञान सागर में समा गया है और इस सागर पर सिर्फ एक तुम'''तुम ही मुस्करा रही हो, कल्लोल कर रही हो, ऐंठ रही हो, इतरा रही हो। इस असीमित सागर पर एक तुम ही नाव हो, एक तुम ही अप्सरा।

और सारी धरती, सारे चाद और तारे, मगल, शनि, वीनस, यूरेनस और बृहस्पति पर तुम ही पसर गयी हो। सारी सूर्य की, ब्रह्मांड की काया और जितने भी और गृह कर्म हैं वह भी सब तेरे व्यक्तित्व ने अलोप कर दिये है। अब तो सब तुम्हारा ही तुम्हारा साम्राज्य छाया हुआ है और तुम्हारे ही आस-पास सभी ग्रह और उपग्रह घूमते हैं। तेरे इश्क ने खण्ड ब्रह्माड मे उथल-पुथल मचा दी है (वैज्ञानिकों को अब नये सिरे से अपनी खोज शुरु करनी पड़गी।)

अब सब कविता, गद्य, पद्य, रचना, वाणी, गुरुवाणी भूल गयी है और बस तुम्हारा ही नाम जपना है। तुम्हे मालूम है मेरे धर्म मे नाम जपने की कितनी पुष्टि की गयी है! नाम जपने से मनुष्य मुक्त हो सकता है। जितनी बार मैं तुम्हारा नाम जपता हूं अगर उसका चौथा हिस्सा भी अकाल पुरख की तरफ लगाऊं तो मैं जन्म-मरण से मुक्त हो जाऊं। अब मेरा तुम ही धर्म हो और तुम ही कर्म (और तुम ही शायद अधर्म और कुकर्म भी)।

मेरे पुस्तकालय मे जड़ित सभी पुस्तको पर सफेदी बिखर गयी है जिस पुस्तक को भी हाथ लगाता हूं और जिसका भी पन्ना पलटता हूं उस पर बस तुम्हारा चित्र ही उभरा हुआ दीखता है और तुम्हारा नाम ही छपा रहता है। बाकी सब खाली है। मेरे दराज, मेरी अलमारियां, भरी तो वैसी की वैसी ही है परन्तु उनके भीतर पड़ी फाइलें और कापियों के अन्दर सब पत्र, कागज और अन्य सामग्री गायब है। जिस चीज को भी देखता हू बीच से तुम ही निकलती हो। कभी मुस्करती हुई, कभी गम्भीर और कभी मुझे सुकड़ती, सकोचती अपना हाथ दिखाती, कभी मेरे साथ नाचने, मेरे साथ भोग करने की चाह करती हुई।

अब इस चौड़े पलग पर सिवाय हमारे और मेरे और कोई नहीं। कभी-कभी मैं भी नदारद सिर्फ तुम ही तुम लेटी रहती हो।

आकाश उसके नीचे डूब गये है। समझो सारा ज्ञान सागर में समा गया है और इस सागर पर सिर्फ एक तुम…तुम ही मुस्करा रही हो, कल्लोल कर रही हो, ऐंठ रही हो, इतरा रही हो। इस असीमित सागर पर एक तुम ही नाव हो, एक तुम ही अप्सरा।

और सारी धरती, सारे चाद और सारे, मंगल, शनि, वीनस, यूरेनस और वृहस्पति पर तुम ही पसर गयी हो। सारी सूर्य की, ब्रह्मांड की काया और जितने भी और गृह कर्म है वह भी सब तेरे व्यक्तित्व ने अलोप कर दिये है। अब तो सब तुम्हारा ही तुम्हारा साम्राज्य छाया हुआ है और तुम्हारे ही आस-पास सभी ग्रह और उपग्रह घूमते हैं। तेरे इश्क ने खण्ड ब्रह्माड में उथल-पुथल मचा दी है (वैज्ञानिकों को अब नये सिरे से अपनी खोज शुरु करनी पड़गी।)

अब सब कविता, गद्य, पद्य, रचना, वाणी, गुरबाणी भूल गयी है और बस तुम्हारा ही नाम जपना है। तुम्हें मालूम है मेरे धर्म मे नाम जपने की कितनी पुष्टि की गयी है! नाम जपने से मनुष्य मुक्त हो सकता है। जितनी बार मैं तुम्हारा नाम जपता हूं अगर उसका चौथा हिस्सा भी अकाल पुरुष की तरफ लगाऊं तो मैं जन्म-मरण से मुक्त हो जाऊं। अब मेरा तुम ही धर्म हो और तुम ही कर्म (और तुम ही शायद अधर्म और कुकर्म भी)।

मेरे पुस्तकालय मे अंकित सभी पुस्तकों पर सफेदी बिखर गयी है जिस पुस्तक को भी हाथ लगाता हूं और जिसका भी पन्ना पलटता हूं उस पर बस तुम्हारा चित्र ही उभरा हुआ दीखता है और तुम्हारा नाम ही छपा रहता है। बाकी सब खाली है। मेरे दराज, मेरी अलमारियां, भरी तो वैसी की वैसी ही है परन्तु उनके भीतर पड़ी फाइलें और कापियों के अन्दर सब पत्र, कागज और अन्य सामग्री गायब है। जिस चीज को भी देखता हू चीज में तुम ही निकलती हो। कभी मुस्कराती हुई, कभी गम्भीर और कभी मुझे घूरती, सकोचती अपना हाथ दिखाती, कभी मेरे साथ नाचते, मेरे साथ भोग करने की चाह करती हुई।

अब इस कोठे पलंग पर सिवाय हमारे और मेरे और कोई नहीं …। कभी-कभी मैं भी नदारद सिर्फ तुम ही तुम लेटी रहती हो।

अब यहां न तो क्रैमलिन, न बकिंघम पैलेस, न ही ऐलिजे, न ही राष्ट्रपति भवन और न ही ह्वाइट हाउस (जिन सब जगहों पर मैं रह चुका हूं) के सपने हैं और न ही रिसती हुई झुग्गियां, लू से जलती झोंपड़ियां, ठण्ड में सर्द होते तम्बू, (इनमें भी मैं रह चुका हूं) की याद। अब तो गोरी, अगर राष्ट्रपति भवन या एलिजे महल है तो भी तुम हो और अगर ठण्डे तम्बू और जलती झोंपडी है तो भी वहां तुम हो।

अब मैं क्या नावल लिखूंगा। अब क्या घटनाओं को जोड़ना, तोड़ना, फिर जोड़ना और फिर तोड़ना। अगर जोड़ता हूं तो भी बीच में तुम हो और अगर तोड़ता हूं तो भी एक से दो होती, दो से तीन और तीन से अनेक'''फिर भी सही-सलामत। तुम सभी जगह पर विराजमान हो। और सर्वव्यापी हो। अब मैं भला क्या पात्र गढ़ूंगा, सवारूंगा और लिखूंगा। अब सब अद्भुत सुगम, दुखान्त और निरर्थक पात्रों में तुम ही एक पात्र हो। अब तुम ही प्रधान पात्र और तुम ही सब पात्रों मे विचर रही हो।

अब इस पलंग पर नींद नहीं आती। निश्चिंत होकर सोने वाला आदमी अब करवटें बदलता रहता है। रोज नौकर को बिस्तर अच्छी तरह झाड़ने के लिए कहता है फिर भी कोई चीज चुभती रहती है। अब कभी यह पलंग मेरे लिए बहुत छोटा और कभी मेरे लिए बहुत बड़ा हो जाता है।

और फिर जानती हो, मैंने क्या किया? मैं पलंग की जगह बैठक में जाकर तख्तपोश पर सो गया। कीमती अफगान कालीन के साथ सजा यह तख्तपोश दीवार के साथ टिका है। भला कौन-सी दीवार? जो दीवार हमारे बीच में है।

क्या मैं जानता हूं कि मैंने क्यों पलंग छोड़कर तख्तपोश पर सोना शुरू कर दिया है? हां, भई! तख्तपोश पर सोने से गरदन सीधी रहती है और पलगों पर सो-सोकर पीठ मे निरन्तर हल्की-हल्की-सी दर्द रहने लगी है। और किसी ने क्या समझा था कि इस दीवार के साथ सोया। मैं तुम्हारे नजदीक रहूंगा। नहीं, यह बात नहीं'''परन्तु अगर सच पूछो तो असली बात यही है। अब क्या अपने आपको झुठलाना।

सोलह

प्रेम पवित्रता है, प्रेम मासूस है, प्रेम की मूर्ति, दिल, हृदय, प्रेम का माहौल पाकीजगी। प्रेम की कसौटी, कुंवारापन।

मुझ बिगड़ैल को आज उसके प्यार ने संवार दिया। छोटी उम्र में मेरे लिए परायी नारी मां या बहन के समान रही हो परन्तु यूरोप से लौटने के बाद और खास तौर पर विभाजन के पश्चात मुझे ऐसी कोई तमीज नहीं रह गयी थी। और उससे भी खासकर जब मेरा पहला उपन्यास छपा तो मैंने समझा कि अब मुझे जो मरजी हो, करने का लाइसेंस मिल गया है। बुद्धिजीवी होना और चीज है और अपने आपको बुद्धिजीवी समझने वाला महसूस करता है कि वह मानवता, सदाकत, सदाचार के उसूलों और बन्धनों से ऊपर है। बुद्धिजीवी इसीलिए सभ्यता और समाज के लिए कलंक भी हो सकते हैं। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं बहुत नीचे नहीं गिरा। सिर्फ इन स्त्रियों के मामले में मैं, आजाद सम्बन्धों का इच्छुक रहा हूं और प्रचारक भी परन्तु इस लीक के लिए मेरे पास कारण हैं (किस लीक के लिए किसको कारण नहीं मिल सकते?)

आज उसके प्यार ने मुझे कुठाली में डाल दिया है। वहां मैं बहुत गर्म हुआ, खूब गर्म हुआ और इस प्रकार धीरे-धीरे मैं पवित्र होने लगा। जो मुझमें खोट थी वह गल गयी। कच्चापन भी ढल गया। बस, अब सच ही सच था—भीतर और बाहर। पत्र-प्रेरक ने तो जाना ही था उसकी याद, उसके ख्याल भी गये। अब और सहेलियां भी गयीं। अब न किसी की तरफ चूमने म उसके साथ भोग करने की इच्छा रखते हुए देखा। मैं

वास्तव मे कुंवारा था।

और तुम ! क्या तुम भी मेरे प्यार मे कुंवारी हो रही थी या हो गयी थी ? क्या तुमने भी अपने पति के साथ भोग करना छोड दिया था। तुम्हारी जिन्दगी मे तो सिर्फ तुम्हारा पति ही था। जो तुम्हारे कुवारेपन का खण्डन कर सकता है। और तुम किसी के साथ क्या मन बहलाओगी।

सचमुच तुमने अपने पति के सिवाय किसी का हाथ नहीं छुआ। अपने पति के अतिरिक्त क्या कोई आदमी तुम्हें अच्छा-अच्छा, मीठा-मीठा सुन्दर-सुन्दर नहीं लगा ?

यह अजीब बात है, हम रोज मिलते हैं, बातचीत भी करते हैं परन्तु फिर भी मैं तुम्हारे बारे कुछ अधिक जानता नही लगता। अभी तक तुम मुझे यह अनुभव कराने में सफल हुई हो कि तुम परम्परावादी माहौल में जन्मी-पली। तुम पढ़ी-लिखी जरूर (मद्रास और मैसूर में) परन्तु इस माहौल के असर तले तुम निकल न सकी। तुम्हारी शादी परम्परागत तरीके से हुई। तुम्हारे मैके और तुम्हारे ससुराल तथा तुम्हारे अन्य सब रिश्तेदार भी उपचारवादी हैं।

परन्तु मैं जानना चाहता हूं कि तुम्हारा निजी उपचारवाद कितना असली है और कितना नकली। क्या तुम स्वयं भी विश्वास करती हो यह विश्वास सिर्फ, मुलम्मा है कुछ मानों में वैज्ञानिक कारणो का परिणाम ?

मुझे लगता है कि जरूर तुम्हारे जीवन मे ऐसी घटनाएं या दुर्घटनाएं घटी होंगी जिनके कारण तुम खुलती नही। काश, उनका पारावार मैं भी पा सकता। मैंने तुम्हारे पति से पूछा है परन्तु वह तो निरा बुद्धू है। पता नहीं अपने दफ्तर का काम कैसे करता है। यदि मैं इस इंश्योरेंश कम्पनी का मैनेजर या डायरेक्टर होऊं तो उसे बर्खास्त करने मे एक क्षण भी न लगाऊं। एक तो वह तुम्हारी बहन की तुम्हारी आंखों के सामने हुई मौत के बारे मे बताता है जिसका मुझे पहले ही पता है। फिर तुम्हारा एक बच्चा समय से पहले पैदा हो गया और तुम मरती-मरती बची। 15 दिन अस्पताल रहना पडा। बस और कुछ क्यों नही कहता, बताता और बोलता। शायद उसे आता-जाता ही कुछ नही।

तुम्हारे घर के बाकी हालातों और तुम्हारे मैके और ससुराल वालों

बातें, और तुम्हारे साथ भी, तुम शायद मेरी चाल समझती हो, टोकती रहती हो, हर हालत में वह तो मेरा दीवाना था।

फिर उसे मैंने ह्विस्की का चस्का डाला। कहा—एक-दो पैग शाम को पी लेना सभ्यता की निशानी है और स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक है। उसे अपनी सेहत के बारे मे अक्सर शिकायत रहती थी और उसका बटन भी मैंने दबाया। साथ में यह भी कहा कि आजकल ह्विस्की आदि के बिना काम-काज मे भी तरक्की नही, खासकर इंश्योरेंस के क्षेत्र मे। आखिर उनकी कम्पनी के विदेशी सलाहकार भी तो हैं। अगर ह्विस्की पियोगे-पिलाओगे और विदेशियों के साथ मिलने-बैठने-उठने के योग्य बनोगे तो शायद तुम्हें विदेश-यात्रा का अवसर भी मिल जाये। मेरे मधुर शब्दों ने उसे बिना पिये मस्त कर दिया। फिर मैं उसे हर आये दिन ह्विस्की की बोतलें देता, कहता कि मुझे फौजी अफसर से मिल जाती है।

उसके बाद उसे मैंने क्लब का चस्का डाला। और कहा कि वह तुम्हें भी जरूर लाया करे। यही उन्नति का रास्ता है।

तुम जानती-बूझती थीं। कभी-कभी तुम्हारी आंखो से मेरे प्रति रोष भी टपकता था कि मैं तुम्हारे पति को बुरी आदतें सिखा रहा हूं। कभी तुम संतुष्ट रहतीं कि चलो इसी बहाने हमारा मिलन भी हो जाता है। जीवन की मौज-बहार की बातें करनी भी नसीब हो जाती हैं। तुमने अपनी जिन्दगी मे क्या देखा है, मेरी प्यारी! लगता है जन्म से ही तुम पर कोई ग्रहण लगा है। अगर तुम मेरी बन सको, मेरी झोली में गिर सको, तो देखो कैसे तुम्हे चांद-तारों की दुनिया की सैर कराता हूं।

और अन्त मे मैंने उसे पश्चिम नृत्य सीखने के लिए डोरे डाले। जब डोरे मेरे डाले हों तो सफल कैसे न हों। और इस प्रकार कुछ रातें मुझे नैनीताल की बोट-क्लब में तुम्हें अपनी बांहों मे लेने का अवसर मिला।

पहले तुम्हारी लड़की को आती गर्मियों मे किसी पहाड़ पर जाने के लिए जिद करने का चारा डाला। डेढ़ साल में वह जैसे चार साल और सयानी हो गयी हो। हमारा रिश्ता उसे अच्छा लगा और रास आया और फिर तुम्हारा लड़का जब छुट्टियों मे आया तो उस पर भी मैंने अपना जादू डाला।' उत्तर में कितने ही पहाड़ी शहर हैं—एक से एक बढ़कर।

शिमला, मंसूरी, मनाली, कमोली, नैनीताल, रानीखेत—मद्रास से आकर दिल्ली रहो और गर्मियों में पहाड़ न गये ? अन्त में तुम्हारा पति खुद मुझसे सलाह लेने के लिए आया। कहता—बच्चे जिद करते हैं। मैंने कहा कि उन्हें खुद भी जिद करनी चाहिए यह बड़ी वाजिब जिद है। उसने सलाह मांगी। पूछा—मेरा जी इस बार नैनीताल जाने को था, नैनीताल और तुम्हारे साथ कैसे दिन होंगे। कैसी रातें।

तुम चारों को अपनी कार में ही लाद लिया। कहा, मेरी कार बड़ी है। फीएट तो चढ़ाई चढ़ने से पहले ही गरम-सर्द हो जायेगी। और फिर मेरा अब और था भी कौन। तुम्हारा परिवार मेरा परिवार था। मुझे अब सिर्फ तुम चारों के साथ ही सरोकार था मेरी जायदाद, मेरी कमाई सब तुम्हारे लिए थी। मैं तुम्हें प्यार करता था।

सत्रह

पर्वतों ने हमारी आत्मा को झकझोरा जैसे घाटी के पीछे से घाटी उभरती और वादी के पीछे से वादी उतरती जाती, तुम्हारा मुंह, तुम्हारी आत्मा खिलती जाती। एक बंद कली, एक बंद जीवन खुल रहा था। काश, इन वादियों और घाटियों का कहीं अंत न होता। न ही नैनीताल, न ही काले, न ही रानीखेत, न ही कैलाश। काश, हम ऐसे ही बढ़ते जाते और कहीं आकाश में जा विराजते।

पर्वतों ने तेरे चेहरे पर हुस्न की भी और प्रसन्नता की भी सुनहरी धूल छिड़क दी। तुम कोई आकाश से उतरी अप्सरा थी जो धरती की यात्रा के बाद वापिस गगन की तरफ जा रही थी।

पहली बार मैंने तुममें चंचलता जागृत होते देखी। तुमने मुझसे प्रश्न पूछे इन पहाड़ों के बारे, मैं हिमालय की अर बाहों और शाखाओं के बारे में। पहाड़ी शहरों और घाटों के बारे में, पहाड़ी लोगों और उनके रस्मो-रिवाजों के बारे में। निजी प्रश्न भी कि मैं कब यहां आया, कितनी बार आया, किसके साथ आया ? तुम अपने मन की घुंडियां भी खोलने लगी, तुमने मुझे बताया कि आज तुमने पहली बार पर्वत देखे हैं यद्यपि तुम्हारा सदा ही जी करता रहा है। इस तरह का दृश्य देखने को। तभी तो तुम्हारा मन पल-पल अभिलाषा करता कि इस सफर का कभी अंत न हो।

परंतु नैनीताल इस सफर का अंत था। बंगला हमारा बोट-क्लब के नजदीक था। यही बोट-क्लब के मैनेजर को मेरी हिदायत थी, बाकी

सब इंतजाम भी हो चुका था। रोटी और नौकर तैयार थे तुम्हे बस केवल नहा-धो कर हाट-श्रृंगार करने का काम था। ऐसे लग रहा था जैसे तुम आज इतनी जल्दी तैयार होकर बाहर आ गयी हो। किसी सुराग से शायद मुझे बाहर लकड़ी के बने जंगले के पास खड़े देख लिया था। तुम आयीं— मैंने तुम्हे पहचान न सका। तुम इस धरती की तो नहीं लगती थी, क्या सचमुच परीलोक से उतरी थी?

तुम आकर मेरे पास खड़ी हो गयी। अपने दोनों हाथ तुमने जंगले पर रख दिये। हमारे पैरों मे महान नैनीताल झील बिछी हुई थी। सामने पर्वतों की अनगिनत श्रृंखलाएं थीं। ऊपर बेपनाह छोटे-मोटे आकाश अंदर-अंदर पता नहीं क्या-क्या कुछ था, झीलें भी पहाड़ियां भी, गगन भी, प्यार भी और आग भी। मनुष्य का मन इसीलिए श्रेष्ठ है।

मैंने तुम्हारी छोटी उंगली के साथ अपनी छोटी उंगली छुआई। तुम थोड़ा-सा घबरा गयी। मैंने उंगली तुम्हारी उंगली पर रख दी और फिर अपना हाथ तुम्हारे हाथ पर। तुम महसूस कर रही थी मेरा शरीर, मेरी मर्दाना हथेली की गरिमा को। नहीं, तुम गुम थी अपने आपको ढूढ़ लेने मे कि अपनी प्राप्ति को गुम करने की कोशिश कर रही थीं।

एकाएक तुमने कहा :

'लगता है यह दृश्य हूब-हू मैंने पहले भी देखा है। मैं पहले भी कभी यहां बिल्कुल इसी स्थान पर खड़ी हुई हूं'''

'और मैं तुम्हारे साथ हूं।'

उसने मेरी तरफ देखा। हां, वह मेरी काया मे समा गयी। मैं उसके कण-कण में। यह आत्मिक भोग था।

फिर एकाएक उसे चक्कर आ गया। वह गिरने लगी, मैंने उसे संभाला। मैंने उसे उठाया और बेसुध को अंदर ले गया। चारपाई पर लिटाया। उसके पति को बोट क्लब के मैनेजर के पास भेजा कि डॉक्टर का प्रबंध करो। उसके लड़कों को उसके पैरो के तलुओं पर घिसाई करने के लिए कहा और खुद मैं उसके हाथों की हथेलियों को दबाने लगा। उसकी लड़की को दिलासा दिया कभी पहाड़ों पर नहीं आई तेरी मां, चक्कर आ ... है डॉक्टर ने भी यही कहा।

परंतु मैं जानता था कि उसे वास्तव में कौन-सा चक्कर आया था। मैं तो खुद ही बेहोश होने वाला था। यह तो अच्छा ही हुआ कि उसने पहल की। इस प्रकार अंदर की घुटन का इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव को सहन करना आसान काम नहीं होता। यह पूर्व जन्म था, कि पूर्व से भी पूर्व।

अगली रात हम बोट क्लब गये। मैंने तुम्हें नृत्य करने के लिए कहा। तुम मेरी बाहों में उमड़ आयी। धीरे-धीरे हम रक्स करते घूमते रहे। मैं तुम्हारी तरफ देखूं, कभी झील की तरफ और कभी पहाड़ियों की तरफ। तुम्हारी भी नजरें घूम रही थी परंतु फिर भी ऐसे लगता था कि हम एक-दूसरे की तरफ एकटक देख रहे हैं। तुम अपने पति से बेखबर थीं जो हमें देख रहा था। तुम सारी दुनिया से बेखबर थी। मैंने तुम्हें अपने नजदीक किया और तुम मेरे साथ लग गयीं। उस दिन मैं तुम्हें जो भी करने के लिए कहता, तुम मान जातीं। परंतु मुझे क्या कहना था, पूछना था। मैं तो खुद भी मुग्ध था। जिस स्वर्ग में मैं सांस ले रहा था, वह स्वर्ग लिंग-भोग से ऊंचा और पवित्र था। हां, मुझे तुमसे पवित्र प्रेम था। प्रेम पवित्र है उसमें पाकीजगी है।

और याद है जब दूसरे दिन मैंने तुम्हें नृत्य करने के लिये कहा तो तुम कैसे चौंकी :

'मुझे नाचना कहां आता है जी। आपको कितनी बार कहा है। क्यों क्लब मे मेरी खिल्ली उड़ाते हैं ?'

परसों के पवित्र नृत्य की याद मैंने तुम्हें न दिलाई।

ठीक परसों का नृत्य नाच नहीं था। वह तो भगवान के सामने ईश्वर के साथियों की तरफ से एक नर्तक श्रद्धांजलि थी। वह दो आत्मिक नर्तक थे···अदृश्य के सामने नाचते हुए।

परंतु रूह को भी तो मांस की जरूरत होती है आखिर।

मैं मजबूर करके तुम्हें मंडप में ले आया और सचमुच ही आज तुम थिरक रही थी, मेरे पैरों पर पैर धर रही थीं और मुझे भी खामख्वाह गिरा रही थीं। उस रात जब मैंने तुम्हें अपने करीब खींचने की कोशिश की तब भी तुम अकड़ गयीं। तुम्हारा शरीर और तुम्हारा मन दोनों तन

गये। मेरे कंधे पर तुम अच्छी तरह अपना हाथ भी न रख रही थीं।

देवी और दुनिया में कितना थोड़ा फ़ासला है। दिव्य से दैत्य बनते पल नहीं लगता। अप्सरा या परी से कोढ़ी की शख्सीयत के दो पहलू हैं।

15 दिन हम नैनीताल रहे। एक दिन मौत दूसरे दिन जिंदगी। एक दृष्टि से आलिंगन दूसरी से दूरी। एक पल उल्लास दूसरे पल विनाश। एक सांस गरम एक सांस सर्द। कैसा प्यार था यह? कैसा खेल! किस तरह की लीला?

मेरा कमरा तुम्हारे कमरे के साथ था और हमारे बीच दीवार थी। क्या यह दीवार हमेशा ही हमारे बीच रहेगी। जहां डिफेंस कालोनी की दीवार पतली परंतु पुख्ता थी वहां यह दीवार पतली भी थी और कच्ची भी। डिफेंस कालोनी में यदि मैं कान लगाकर कोई आवाज सुनना भी चाहूं तो भी नहीं सुन सकता था, कई बार कोशिश कर चुका था। सोता तो तख्तपोश पर था। तख्तपोश से धरती और धरती से वृक्षों में जाना होगा। मनुष्य को फिर बंदर की योनि ग्रहण करनी होगी।

तख्तपोश पर सोता—सोता या जागता? मोहब्बत में सोना कहां? मोहब्बत में सोना भी जागने की तरह है और मैं दीवार को प्यार करता, दीवार को चूमता, दीवार को गले लगाता (परंतु कोई चीज भी आगोश में न आती)। सिर्फ दीवार के साथ अपना शरीर रगड़ा ही जा सकता था। इस दीवार के दूसरी तरफ तुम थीं···तुम, जिसके साथ मुझे इश्क था।

नैनीताल वाली हमारी बीच की दीवार मैली थी, उसे मैं दबा या चूम नहीं सकता था। फिर भी उस पर हाथ फेरता, तुम्हें महसूस करता, सुनने की कोशिश करता। जब तुम लोग बोलते तो कुछ सुनाई पड़ता परंतु तुम इतना कम बोलती हो कि आवाज आती सिर्फ तुम्हारे पति की या तुम्हारे दो बच्चों की। अरे भई, बोला करो न। तुम जैसा सुंदर मुख और सुंदर शरीर चुप रहने के लिए नहीं बना। चुप रहने वाला आदमी बुद्धिजीवी नहीं बन सकता। बातचीत, वार्तालाप, चर्चा, तर्क, दलील द्वारा ही मसले सिद्ध होते हैं। मन की मुश्किलातें सुलझती हैं, कठिनाइयों के लिए समाधान ढूंढते हैं। बोला करो भाई। यद्यपि मुझे तुम्हारे बोल नजीब

नहीं। मुझे तुम्हारा बोलना, चहचहाना, मुस्कराना, हंसना, नसीब नहीं। परन्तु अच्छा लगता है चाहें किसी के साथ भी हो। तुम्हारी चुप्पी मुझे काटती है मैं, तुम्हें प्यार करता हूं और तुम्हारी खुशी में ही मेरी खुशी है। तुम्हें चुप, उदास और खोया हुआ देखकर मेरा मन भर जाता है, मेरा जीवन तुम्हारे लिए और मेरे जीवन में जो कुछ है वह भी तुम्हारे लिए। मेरा मन और धन जैसा चाहो वैसा उसका प्रयोग करो या फेंक दो इसे। परन्तु खुश रहो, हंसती रहो, बेशक एक दीवार नहीं हजार दीवारें बीच में हों। मुझे तुम्हारी खुशी, तुम्हारी प्रसन्नता की जरूरत है। दीवारें तो गौण होती है। मेरे भीतर-बाहर तुम ही तुम हो। मेरे शरीर के कण-कण में और मेरी आत्मा की सीमारहित विश्वात्मा में तुम ही तुम पसरी हो।

अठारह

एक नजर मेरी हिमालय की फैली हुई शृंखलाओं पर थी तो दूसरी नजर तुम्हे देखे जा रही थी। तुम मुझे हिमालय की इन फैली हुई शृंखलाओं में उभरती एवरेस्ट, नंदा देवी, कंचनजंघा या अन्नपूर्णा चोटियों की भांति ही एक चोटी लगती थी। निरंतर बर्फ से लदी हुई। एक तो तुम तक पहुंचना मुश्किल और पहुंचकर भी ठंड में ठंड होना है।

दाद दो तुम मेरी हिम्मत की कि मैं फिर भी तुम तक पहुंच गया। मोटर के पहिये फिसलने वाली और सीधी जाने वाली यह चढ़ाई नहीं थी। कई मेड़ बनी हुई थी। कई तरह की नखरे वाली और स्वांग भी मुझे रचने पड़े, कई राह-कुराह भी मुझे चुनने पड़े। उफ, तब कहीं जाकर मैं तुम तक पहुंचा। इतनी एकाग्रता, इतनी तन्मयता, इतनी दीक्षा, इतना समर्पण मैंने आज तक अपनी किसी रचना रचने में भी नहीं किया। और न ही कभी ईश्वर की प्राप्ति के लिए ही किया है। लेकिन तुमने मुझसे यह सब कुछ करवाया और तब कहीं जाकर तुम्हारी प्राप्ति हुई।

प्राप्ति तो हुई परंतु न मेल हो सका न मिलाप। बर्फ को भला कोई क्या गले लगाये। ठंड का क्या आलिंगन करे! लिहाजा एक और प्रयास, एक और मुहिम, एक और चढ़ाई। अपने शरीर और अपने मन में मैंने मानो सूरज बिठा लिया, साकार सूर्य जिसमें हजारों डिग्री जितनी गरमी है और जिस गरमी के साथ हिमालय भी पिघल जाये। मैंने तुम्हें पिघला लिया। मैंने तुम्हें गले लगा लिया परंतु···परंतु, ज्यों ही तुम मुझसे अलग हुई तो पुनः ठंड से तुम लादी गयी, ढकी गयी। और सदा तो मैं ही

सूर्य अपने अंदर नहीं विठा सकता था।

थोड़ा-थोड़ा करके मैं जोड़ता हूं और जब कुछ जोड़ चुकता हूं तो तुम ठोकर मारकर उसे बहा देती हो। तिनका-तिनका इकट्ठा कर घरौंदा बनाता हूं और तुम अपनी एक अदा से उसे छिन्न-भिन्न कर देती हो।

क्या है तुम्हें? क्या बीता है तुम्हारी जिंदगी में? इसी जिंदगी में कि पूर्व जन्मों का जंजाल भी तुम्हारे भीतर पालथी मारे बैठा है। मैं अपने आपको और मेरे चिर-परिचित भी मुझे अनोखा और टेढ़ा व्यक्ति कहते हैं। परंतु मैं तो तेरे इश्क में सीधा हो गया हूं। परंतु तुम्हारा टेढ़ापन अभी तक बना हुआ है। तुम कब सीधी होओगी?

दिखाओ मुझे अपना सम्पूर्ण भीतरी मन। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि सभी मानसिक रोगों का यही बढ़िया इलाज है इसीलिए मैं कहता हूं कि तुम बोला करो हरेक के साथ, किसी से भी। बोल-बोल-बोल ताकि तुम्हारे मन की भूल-भुलय्या में आवाज का प्रकाश पहुंचे, तुम्हारी आत्मा के बन्धन टूटें।

कभी-कभी मैं निराश हो जाता हूं और थक भी जाता हूं। इतनी मेहनत, अपने भीतर इतनी गरमी पैदा करना, इतना मन मारना, आसान नहीं होता प्रिय, और मैं अपने आप से पूछता हूं: यह सब किसके लिए? सचमुच तुम्हारे साथ लिंग-भोग की कोई तृष्णा नहीं। अब मैं तुम्हारे साथ विवाह भी नहीं करना चाहता, बेशक तुम्हारा पति मरे और वह तुम्हें मेरे पास छोड़ दे। हां, तुम्हारी दीद की तमन्ना जरूर है। तुम्हें कहीं करीब-करीब रखने की। तुम्हें छू सकने और गले लगा सकने की। परन्तु इस इच्छा की पूर्ति करने के लिए इतना परिश्रम और इतनी पीड़ा क्या जायज है?

मेरे मन में शंका पैदा होती है और विवेक अनायास पूछता है परन्तु कहीं भीतर से ही प्रेम का एक छींटा-सा पड़ता है और सभी सवाल, सभी शंकाएं, सभी संदेह, सभी कठिनाइयां शान्त हो जाती हैं। निराशा और तिलमिलाहट की शिकायत भरी 'कहानी मूक हो' जाती है। जी हां, 'मैं जनाब को मोहब्बत करता हूं।

तुम्हारा भाई और भाभी आये दो-ढाई सालों में पहली बार तुम्हारे

यहां तुम्हारा कोई रिश्तेदार आया। तुम लोग कितने कोरे हो! किसी के साथ बनाकर क्यों नहीं रखते। यार-दोस्त भी कम ही आते है। और अगर आयें-जायें तो अच्छा रहता है। मेल-मिलाप होता रहता है और इस प्रकार सम्बन्ध बढ़ते रहते हैं। ज्यादा आदमियों के साथ बातें करने से दृष्टिकोण भी विशाल होता है और झिझक खत्म हो जाती है।

तुम्हारे भाई की शादी हुए अभी तीन वर्ष ही हुए थे। मैसूर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था। मेरा परिचित था। और मुझ एम० ए० के विद्यार्थी को पढ़ा रहा था। जब तुमने जान-पहचान करवायी तो वह हैरान ही रह गया। उसको ख्याल था कि अब मेरे साथ उसकी मुलाकात होना अनहोनी बात थी। मेरी तारीफ कर-कर उसने मुझे आसमान पर चढ़ा दिया और जब उसने तुम्हारे प्रति मेरा आकर्षण देखा तो तुम्हें उसने कितना खुशकिस्मत जाना। आखिर मेरी महानता की सभी तरफ चर्चा है। प्रिये, मैं कोई आम, ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा नहीं। लाखों में एक हूं। तुमने शायद पढ़ा तो है मुझे परन्तु ध्यान से नहीं। या शायद मेरी प्रतिभा का अनुमान लगाना तेरे वश की बात नहीं। परन्तु आज किसको इस बात की चिन्ता है, यह तो लिखने के लिए लिख रहा हूं। तुम्हारे प्रेम का एक भाग ही समुद्र के बराबर है मेरी प्रशंसा का।

लिखने के लिए लेख कितना कुछ लिख जाता है ऐसे कल्पित आडम्बर रचता है कि मासूम पाठक और विद्यार्थी उन आडम्बरों को वास्तविक जानकर उनको समझना-बूझना कहते हैं। ऐसे झूठ के अन्दर निर्मित करता है उपन्यासकार की भविष्यवादी उनमें माथे रगड़ते-रगड़ते थक जाते हैं। कभी दार्शनिक या आम गद्य लेखक पर तो बेशक विश्वास कर लो साथियो, परन्तु गल्पकार का कतई विश्वास न करो। उसके हर शब्द पर सन्देह करो। पढ़ो, सिर्फ ज्ञान और बुद्धि के लिए परन्तु कभी भी न उसे उदाहरण बनाओ और न ही सच या आदर्श तथा सिद्धान्तों की कसौटी ही बनाओ। लिखने के लिए लिखता है गल्पकार बिना जिम्मेदारी के। क्या जिम्मेदारी है उसकी आखिर अगर किसी ने जीवन नष्ट कर लिया तो कहेगा: यह तो कल्पना थी, गल्प था, वास्तविक नहीं। मेरा क्या कसूर मैंने तो पुस्तक के पहले पन्ने पर ही लिख दिया था कि मेरे उपन्यास के

सभी पात्र और कहानी काल्पनिक हैं। उसने मजे के लिए लिखा और आप अपनी जान खो बैठे हैं।

क्यों मेरी प्यारी के प्यारे प्रोफेसर भाई जी, अगर यह उपन्यास आपको कॉलिज में पढ़ाना पड़ गया तो क्या कीजियेगा? इसमें तो हमें किसी पात्र का नाम ही नहीं मालूम। कैसे प्रश्न करेंगे और कैसे उत्तर मांगेंगे। घबराये हुए छात्र-छात्राएं जब कहेंगे कि यह क्या उपन्यास है तो सिर्फ इतना कहकर कि यह आधुनिक मंजन उपन्यास है, काम नहीं बनेगा। तनिक और गहराई में उतरना पड़ेगा।

तो कीजिए न फिर गहरा और गहन विचार। इसीलिए तो मैं मुश्किल बनता जा रहा हूं। इसी मुश्किल से ही तो आपकी सूझ-बूझ का दायरा बढ़ेगा। यही मेरा आदर्श है और यही मेरा दुनिया और दुनियादारी पर अहसान। हर हालत में इस आधुनिक काल में नामों की क्या जरूरत? नामों के साथ अपनत्व और व्यक्तित्व उभरता है और हम यह दो वस्तुएं समाज में से खत्म करनी चाहते हैं। यह समाजवाद है, साम्यवाद है, अराजकतावाद है। निर्जीपन क्यों नम्बर एक दो, तीन, चार, पांच, छः, सात या सात सौ एक, आठ सौ दो, एक हजार ग्यारह, दो लाख दस, तीन करोड़ चवालीस क्यों नहीं। इस तरह अराजक निजाम के लिए सब सरकारी और निजी क्रियाएं कितनी आसान हो जायेंगी। हम भविष्य के मतवाले हैं मतवालों को भला नामों से क्या डर।

सो अगले उपन्यास में मैं भी मतवाला हूंगा, मेरी लेखनी भी, पात्र भी, जिनके नम्बर होंगे एक, दो, छः सौ पांच, एक अरब छः आदि। न चैप्टर होंगे, न पैरे, कामा, कारक, प्रतिक्रिया, वर्गीकरण और वाक्य विचार तो मैं अपने किसी पहले उपन्यास में ही उड़ा चुका हूं और नाम अब उड़ा दिये है। चलिये, इस बार स[illegible]
प्रतिभा का हौसला तो है

प्रोफेसरों, विद्यार्थियों, दार्शनिकों, कवियों को चला रहा हूं, एक नया रास्ता दिखा रहा हूं ताकि एक दिन आप लोग दौड़ने के योग्य बन सकें। कहीं आप घुटनों के बल ही न चलते रहें और हम आसमान पर छा जायें।

उसका प्रोफेसर भाई मेरी लेखनी से पहले ही प्रभावित था अब मेरे

व्यक्तित्व से भी अति प्रभावित हुआ। परन्तु मैंने उसे प्रभावित करने की कोई कोशिश नहीं की। भला प्रेम में असीर पक्षी क्या किसी को प्रभावित करने की कोशिश करेगी है। उसे तो पिंजड़ा ही प्यारा है, वह तो रिहाई चाहती ही नहीं। उसका संगीत सभी के लिए है, किसी वाहवाही का वह मोहताज नही।

मैंने तुम्हारे भाई की खातिर की, यह बात तुम्हें अच्छी लगी। मैं उसे क्लब ले गया सिनेमा ले गया, उसकी पत्नी को एक फ्रांसीसी इत्र की शीशी भेंट की। चुस्त, सुशील और सुन्दर थी वह, शायद कभी फिर मेल-मुलाकात हो जाये। और उसे अपना नया उपन्यास…।

वह चले गये और जैसे घर खाली हो गया। जैसे तुम और मैं अकेले रह गये।

तुम और मैं अकेले ही थे अपने दोनों घरों मे, सारी डिफेंस कालोनी में, सारी दिल्ली में, सारे संसार में। तुम मेरी दुनिया थी, मैं तुम्हारा विश्व।

मुझे याद है जब पिछले साल सर्दियों मे मुझे बुखार हो गया था। जालंधर लेक्चर देने के लिए जाना था और वहा से मलेरिया चिपका लाया था। तुम सुबह अपनी लड़की के साथ और शाम को अपने पति के साथ मेरे दवा-दारू के लिए आती थीं। अकेली क्यों नहीं आती थी। किसी बात से डर लगता था क्या। मैं तो चारपाई पर पड़ा था और अगर स्वस्थ भी होता तो भी तुम्हारी मरजी के बिना हाथ न लगाता। और यह भी तुम्हें बता दूं अगर मेरी हाथ-छूच लगाने की मरजी होती तो मैं तुम्हे अपने वश में कर लेता। खुद बेवश न होता। मैंने तुम्हारी लड़की के सामने तुमसे पूछा भी था :

'यह संतरी सदा क्यों साथ लाती हो?'

तुम मुस्करायीं नही, अगर मुस्करा देती तो मुझे एक तरह का उत्तर मिल जाता। मुस्कराइये हुजूर। क्यों दुखी करती हो अपने आप को। मुस्कराने से आप का शील भंग तो नहीं होता।

मैंने जिद करके उससे फिर पूछा तो उसने कहा :

'आप जानते तो है।'

'नहीं तो, सचमुच में कुछ नहीं जानता तुम्हारी कसम।'

तुम चुप हो गयी। मैंने कहा :

'वह उठना-बैठना, परवरिश, तुम्हारा समाज, हमारा माहौल, सभ्यता का तकाजा इत्यादि।'

तुमने कहा :

'हां!'

'छोड़ो भी परवरिश, माहौल और उठने-बैठने की बातचीत। नैनीताल के बोट क्लब में कहां गयी थी तुम्हारी परवरिश? वही तुम्हारा असली रूप था, जब तुम असली थीं—अब नकली। स्वांग धारण करके जीना क्या जीना है। उतार दो इस ताबूद को जो तुमने अपने आस-पास मढ़े हुए हैं।'

'परन्तु तुम ताबूद को उतारो और फिर जड़ो। तुम भूलो अपनी परवरिश और फिर जा फंसो कहीं और।'

उन्नीस

एक रात तुम्हारी याद बड़ी प्रबल हुई। तख्तपोश पर लेटे-लेटे मैंने बरबस दीवार को चूम लिया'''आलंकारिक रूप में या काल्पनिक रूप में नहीं बल्कि सचमुच। कभी-कभी प्रेम में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। नदियों में आये प्रवाहों और समुद्रों में उठे तूफानों की तरह प्रेम मंडल पर भी बाढ़ का कारण नहीं लादा जा सकता। जागते हुए भी तुम्हारी याद सताती है और सोते हुए भी। और सपनों में भी तुम ही आया करती हो। नींद खुली तो मैं दीवार को लिपटने की कोशिश कर रहा था। सो गया तो फिर तुम्हारा सपना आया और फिर मैं दीवार से जा लिपटा। एक तरह की ग्लानि हुई मुझे अपने आप से। क्या था और क्या रह गया था। जो चाहूं पा सकता था और आज सपनों में दीवारों का आलिंगन?

मैं उठकर बैठ गया। चाहा कुछ लिखूं परन्तु लिख न सका। कितनी देर हो गयी थी कुछ लिखे हुए। पढ़ना चाहा लेकिन मन न लगा क्योंकि तुम दिलो-दिमाग के सामने थीं। सुबह होने वाली थी अब मैंने फिर सोने की कोशिश की और मन से निवेदन किया कि अब तुम्हारे सपने न आएं। कभी मन को हुक्म देकर सुलाया करता था।

बाद में तुम्हारा सपना तो न आया परन्तु अब लगभग दस बजे नींद उचटी और मैं उठ पड़ा तो तुम्हारी याद पुनः प्रबल हो उठी। कोशिश करने पर भी कारण ढूंढ न सका।

और अचेत ही मैं तैयार हो गया और तुम्हारा दरवाज़ा जा खटखटाया। तुमने सिटकनी खोली और अचरज भरी नज़रों से मेरी तरफ

देखने लगी जैसे कोई अजनबी तुम्हारे दरवाजे पर आ खड़ा हो। मैं तुम्हारी हैरानी पर हैरान था।

जब न तो तुम हिली और न ही तुम बोली तो मैंने पूछा, 'क्यों ?'

'आप !'

मैंने दोहराया :

'क्यों ?'

अनमने भाव से तुमने दरवाजा खोला। अन्दर घुसते हुए मैंने सिर घुमाकर देखा सामने घर की दोनों स्त्रियां—ऊपर वाली और नीचे वाली—इधर देख रही थी। बस ! इतनी-सी बात थी। तो क्या हुआ। हमारा रोज का आना-जाना है, इसे सारी दुनिया जानती थी। इकट्ठे क्लब जाना, इकट्ठे छुट्टियां मनाना।

लेकिन तुम घबरा गयी। तुमने मुझे अच्छी तरह बिठाया भी नहीं, पूछा भी नहीं [illegible] पिलाने का कोई प्रस्ताव ही रखा। [illegible] ? मैंने यह प्रश्न किया है कि रात [illegible] क्या था उसके बारे में मैं तुम्हें कुछ न कुछ बताऊंगा क्योंकि मुझे तुम्हारी और तुम्हारे सेहत के बारे में फिक्र है।

मैं अपने आप बैठ गया। परन्तु तुम अवाक् एक ओर खड़ी रही। मैंने कहा :

'बैठ जाओ।'

'हूं !' नौकर है नहीं रसोई में हो आऊं।'

रसोई में तुमने काफी देर लगा दी। क्या सारी की सारी रोटी पकाने के लिए बैठ गयी थी या मुझ पर फेंकने के लिए पानी उबालने लग गयी थीं। एक मुद्दत के बाद तुम लौटी और फिर दूर पड़ी कुर्सी पर गुमसुम-सी बैठ गयी। तुम्हारा घर है भई, खुलकर बैठो। अगर दुनियादारी से डरती हो तो तुम्हारे यह डर बेबुनियाद हैं। मुझे कई अवसर मिल चुके हैं। मैं तो तुम्हारे प्रेम में गुम, तुम्हारे दर्शनों के लिए आया था। मेरा मन प्रकाश चाहता था बस !

मैं मुस्कराया ! किस तरह आया था और किस प्रकार जाना होगा।

मुझे लगा जैसे कोई चीज मेरे भीतर से घुल-घुलकर जमीन पर गिरे जा रही हो। तुम्हारी हरकतों ने मुझे बेजुबान कर दिया।

मैं उठ आया शायद मेरे लिए तुम्हे अचम्भित करना ठीक नहीं था। कैसे सोचता, सोचा नही जा रहा था। प्रेम मे प्रेम पर क्या दोष थोपा जा सकता है। जो कुछ होता है या बीतता है उसे अपने आप पर ही सहना पड़ता है।

मैं लौट आया परन्तु आराम नसीब न हुआ। न बाहर जाने की इच्छा करती, न घर बैठने की। मैं खामख्वाह नौकर को लाल-नीला हुआ सम्पादकों और प्रकाशकों को ऐसे ही सख्त चिट्ठियां लिख डाली, रामराज के सम्पादक के साल के लिए पेरिस जाने के निमन्त्रण को दूसरी बार रद्द कर दिया। इस बार उसे बड़े ही प्रेम से पत्र लिखा था (प्रेम! प्रेम!! प्रेम!!! कैसा वेहूदा शब्द है जिसका हर बार गलत तौर पर प्रयोग किया जाता है)। कहता था : कोई कारण तो बताओ दोस्त। नहीं जाना, नहीं जाना! और तुम्हे क्या चाहिए। चार हजार फ्रैंक माहवार, आने-जाने का खर्च और हफ्ते में सिर्फ, एक रपट। अगर तुम नहीं गये तो मैं डाइरेक्टरों के बोर्ड के सामने कच्चा पड़ जाऊंगा क्योंकि उनके सामने मैंने ही तुम्हारा नाम पेश किया था। जबकि डाइरेक्टर अपने भांजे को भेजने को इच्छुक थे।

उस शाम तुम्हारी लड़की मेरे घर आई और कहने लगी :

'हम आज रात की गाड़ी से मद्रास जा रहे है। मेरी नानी बीमार है। ब्लडप्रेशर बहुत बढ गया है।'

'एं?'

'हां।'

वह उदास थी जैसे तुम सुबह डरी हुई थीं वह अब सहमी हुई थी। जैसे नानी का ब्लडप्रेशर नही मा का बढा हो।

वह प्यार करती थी तुम्हारी लड़की मुझे। मैंने उसे उठा लिया और छाती के साथ लगाया। उसे चूमा, उसने भी मुझे चूमा। उसकी सहमी हुई आंखें और लहजा खत्म हो गया। खिलखिल हंसते हुए उसने पूछा :

आपकी दाढ़ी बिखार दूं? मैंने उसे गुदगुदाया और उसने मेरी दाढ़ी

बिखेर दी ।

अब मैं तुम्हारे सुबह वाले भय का कारण समझा । तुम मानसिक तौर पर सतुलित नहीं थीं । तुम्हारे भीतर ज्वार-भाटा उठ रहा था । और तुम उनका आधार नहीं जानती थीं । मैंने तुम्हें माफ कर दिया ।

तुम्हारी विदा से मेरे मन में तरह-तरह के विचार आ-आ रहे थे । कैसे मैं तुम्हारे बिना रह सकूंगा ? पिछले हफ्ते तुम एक शाम मुझे बताये बिना अपने पति की कम्पनी के डाइरेक्टर के यहां चली गयी थीं और मैं तुम्हारी याद में आधा रह गया था । अगर शुरू से ही तुम आम तौर पर बाहर आती-जाती तो और बात थी और फिर जब से हम प्रेमी बने थे, हम एक-दूसरे को रोज या दूसरे-तीसरे दिन मिलते । तो मुझे तुम्हारा सब प्रोग्राम पता चल जाता । तुम, तुम्हारा पति या तुम्हारी लड़की मुझे सब कुछ बता देती । उफ ! परन्तु उस दिन मेरी जानकारी के लिए तुम्हारा जाना कहर था । याद है तुम्हे, मैंने तुम्हें कहा था :

'बिना बताये कहीं न जाया करो दिल टूट-सा जाता है । बता कर बेशक महीना भर लगा आओ ।'

और आज मुझे बताकर तुम महीने भर के लिए जा रही थीं और फिर भी मेरा दिल टूट रहा था ।

स्टेशन पर बड़ी मुश्किल से तुमने मेरे साथ अकेले बात करने का अवसर ढूंढा । तुमने कहा :

'सुबह की गुस्ताखी के लिए मुझे माफ करना ।'

मुस्कराने का समय नहीं था नहीं तो मैं हंस देता । उत्तर की कोई आवश्यकता नहीं थी ।

तुम और तुम्हारी लड़की दोनों चली गयीं । और मैं तुम्हारे पति को वापस लाने के लिए मजबूर था क्योंकि मोटर जो मैं अपनी ले गया था । राह भर वह बातें करता जाता । मुझसे गम सहन नहीं हो पा रहा था । और वह हवा में उड़ रहा था । यह आदमी तुम्हारे योग्य नहीं था एक बार भी उसने न कहा कि वह तुम्हारे बिना उदास हो जायेगा या कि तुम अच्छी हो, प्यारी (?) हो, इत्यादि ।

मैं उसे मोटर में लाद कर घर लाया ।

अपने कमरे में पैर रखा तो ऐसे खालीपन और अकेलेपन का अहसास हुआ कि मैं बौरा-सा गया। पलंग पर सोने से पहले ही खत्म हो चुका था। और आज तख्तपोश भी आंखों को चुभ रहा था। अगर आंखों को चुभता था तो शरीर को कैसे नहीं चुभेगा। आज अगर सोते हुए दीवार के साथ मेरे शरीर का कोई अंग जा लगा तो वह अंग क्या जल नहीं जायेगा ? क्या करता ? ऐसे अवसरों के अनुकूल मैं अभी तक अपने आप को ढाल नहीं सका। कभी भावनाओं ने इस प्रकार विस नहीं किया था। किसी की विदा ने इस प्रकार चारों तरफ फैली मौत का अहसास नहीं कराया था।

ऐसे लगा जैसे यह मेरा न हो बेगाना हो। सुनहरी जिल्दों में जड़ी और अपने हाथों से लिखी पुस्तकें आज मुझे अपनी लिखी नहीं लग रही थीं। न ही घर की कोई और चीज मुझे भा रही थी। जिसके साथ मेरा वर्षों से संबंध रहा था। यह नौकर किसका था और इसे क्या हक था मेरी बदहवाशी के कारणों को जानने का ? बदतमीज ! बेशर्म !!

यह मेरा घर था कि लाश रखने की जगह ? तख्तपोश, कुर्सियां, मेज, तस्वीरें, गुलदान, फानूस, गलीचे, सभी लाशें लग रही थी...

मैं उल्टे पैर घर से बेघर होकर लौट आया। वह रात मैंने अपने छोटे भाई के यहां काटी।

बीस

प्रेम का सबसे मलिन पक्ष प्रेमिका के कुत्ते को पुचकारना है। प्यारे कुत्ते, या बिल्ली, या चूहे (बच्चे या बच्चियां) गधे (पुरुष) और अन्य बिल्लियां और कीड़े-मकोड़े (रिश्तेदार, मित्र कपड़े, भोजन आदि) की जी-जी, श्लाघा, खातिर-तवज्जह प्रेम की संवेदना को निम्न स्तर की संवेदना में ला खड़ा करती है। दुनियावी इश्क का यह जुज हकीकी इश्क पर लागू नहीं होता। जहां मुहब्बत में सिवाय मुहब्बत के अनदेखे पात्र के अन्य लोगों के सामने एक तरह का बढ़ियापन उपजाते हैं।

उसकी लड़की को भी इसलिए चूमता-चाटता था कि वह उसकी लड़की थी। वैसे उसकी लड़की के साथ प्यार (?) किये जाने के निजीगुण भी मौजूद थे परन्तु उसका पति और उसका पुत्र तो मनुष्य की कोटि में आते ही नहीं थे। वह तो अपने बालों को संवारते रहते या कपड़ों को संभालते रहते।

भला जब तुम यहां थी तो मैं उनके साथ सरोकार रखूं परन्तु अब जब तुम यहां नहीं तो यह मुझे मजबूरी क्यों? उफ! मजबूरी यह थी कि मैं तुम्हारा प्रेमी था और तुमको एक दिन वापस लौटना था। और उनकी मुझे फिर जरूरत पड़नी थी।

परन्तु तुम्हें कब वापस लौटना था? दो दिन, पांच दिन, सात दिन और आज पन्द्रह दिन हो गये थे। तुमने सिर्फ दो चिट्ठियां लिखीं थीं अपने पति को, उसने सिर्फ एक। असभ्य! बस तेरे पत्रों का पता पाने और यह जानने के लिए कि तुम कब आ रही हो, मैं तुम्हारे पति को समय-असमय

बुला लेता। परन्तु उसे तुम्हारे आने या न आने में कोई फर्क नहीं पड़ता था। अगर फर्क नहीं पड़ता था तो तुम्हें छोड़ क्यों नहीं देता?

मैं उदास, निराश, बदहवाश और मौत मेरे ओंठों पर। मुझे लगता, कि मेरा तो जीवन ही तुम थीं और तुम्हें देखे बिना मैं मर जाऊंगा। और मरने के लिए मेरा जी न करता।

मैंने क्या किया फिर? जो कुछ मैंने अपनी अंधी जवानी के दिनों में भी नहीं किया था और जो कि सिर्फ एक खास अल्हड़ उम्र में किया जा सकता है या किया जाना चाहिए। मैंने टिकट लेकर और बिना किसी को बताये मद्रास जा पहुंचा।

प्रेम किस प्रकार आदमी को अपना-आप भुला देता है। प्रेम किस प्रकार आयु, ज्ञान, सूझ को पछाड़ कर स्वाभाविक भावनाओं को सर्वोत्तम बनाता है। प्यार करता हुआ मनुष्य सदा जवान और अल्हड़ है'''मूर्ख!

माइलापुर तुम लोग रहते थे परन्तु तुम्हारे घर के आस-पास कोई होटल नहीं था लिहाजा मैं पहले की तरह जिमखाना क्लब ही जाकर ठहरा। सुबह-शाम मैं तुम्हारे घर के सामने से निकलता परन्तु न कभी तुम बाहर और न ही तुम्हारी लड़की और न ही, कभी कोई खिड़की-किवाड़ पर दिखाई देता। डॉक्टर भी आता-जाता मैंने कोई न देखा। दो दिन तक घूम-फिरकर मैंने क्लब के नौकर को भेजकर मालूम करवाया तो पता चला कि बीमार मां के साथ तुम मैसूर गयी थीं। कुछ दिनों के लिए।

मद्रास से मैं मैसूर पहुंचा। अब इन्तहा हो चुकी थी। या तो मैं कान को हाथ लगाऊंगा या जान दे दूंगा। बेसब्री के कारण मैं सीधा तुम्हारे भाई के यहां चला गया। तुम्हारा भाई मुझे अच्छा लगा था और गुरुओं की तरह उसमें मेरी श्रद्धा थी। जब टैक्सी लिए मैं वहां पहुंचा तो वह अपने घर के बाहर वाले दरवाजे का ताला खोल रहा था (और तुम लोग वहां नहीं थे)।

वह मुझे देखते ही ताला पकड़े हुए मेरी तरफ लपका और बड़े आदर व सम्मान के साथ उसने माथा झुकाया। दोनों हाथ जोड़े। ताला और चाबियां हथेलियों के बीच लिये हुए।

'आप ?'

'हां, जनाब ! मैं मैसूर आया था, आप को मिले बगैर लौटने को जी न किया ।'

चोटी के घर नारायण पधारे थे। उसने मुझे टैक्सी से उतरवा लिया। टैक्सी का किराया दिया। वाह री श्रद्धा ! फिर मुझे भीतर ले गया। मैंने जाना ही था तुम्हारे बारे में जो पूछना था।

मुझे पता चला कि तुम लोग सभी मैसूर सिर्फ माथा टेकने ही आये थे। तुम्हारी मां की इच्छा थी कि मरने से पहले वह श्रीरंगापट्टनम् के मंदिर मे स्थापित सुब्रह्मण्यम के आगे अपना माथा नवा सकें और अब वह मरने के नजदीक ही थी। वाह ! कितनी काव्यमयी इच्छा थी !

मैं मरने से पहले क्या करना चाहूंगी ? सोच'''सोच'''। क्या''' क्या ? न मेरे लिए मंदिर और न ही गुरुद्वारा ना ही सुब्रह्मण्यम न ही बुद्ध की मूर्ति। पेरिस या लासएंजलिस जो दो जगहें मुझे बहुत प्यारी लगी थीं। परन्तु ब्लडप्रेशर के मरीज को विमान से उड़ने की मनाही है और पानी के जहाज से जाते-जाते ही मौत हो जायेगी। अपनी सास के दर्शन ? तोबा नहीं, जहन्नुम जाने से पहले जन्हनुम क्यों भोगा जाए किसी प्यारी या प्यार को छूना चाहिए परन्तु प्यार तो अभी देखा जा रहा है और मैं इस जज्बे से मुक्त हो रहा हूं। फिर'''फिर'''क्या ? हां ! चांद पर सैर ! पगला ! इच्छा उस चीज की होती है जो पहले भोगी हो, देखी हो या पता हो। मकान पड़ा नहीं कि चोर पहले आ पहुंचे। अभी चांद देख तो आओ। परन्तु हर हालत में ब्लडप्रेशर के मरीज को जैसे कि तुम्हें अभी बताया गया है उड़ना मना है। क्यों मना है जी ? हमें कोई ब्लडप्रेशर है क्या ? हम तो स्वस्थ मर रहे हैं। हमारा तो सिर्फ मरने के लिए ही मरना है (अगर कोई अच्छी पत्नी या प्रियतमा पास होती तो कहती : ऐसे शब्द मुंह से न निकालें। मरने के बारे में भी कोई इस तरह कहता है भला ?) परन्तु मरने के बारे सोचना जरूर चाहिए। मौत का अन्त ही तो फिलासफी परमार्थ और आध्यात्मिकता का आरम्भ है।

तो तुम अपनी मां के साथ श्रीरंगापट्टनम के सुब्रह्मण्यम के सामने माथा झुकाने के लिए आयी और चली गयीं। माथा टेकते वक्त तुमने क्या

प्रार्थना की थी ? मुझे याद किया था ? मेरा भी मन हुआ कि मैं भी श्रीरंगापट्टनम के सुब्रह्मण्यम् के सामने माथा जा झुकाऊं और मैं गया भी।

लेकिन अपने घर से बाहर निकलने से पहले तुम्हारे भाई ने मुझसे एक दिन और रहने को वचन जरूर ले लिया। उसकी मंशा थी कि मैं उसके विश्वविद्यालय में एक भाषण दूं। ना-ना करने पर भी उसने मुझे मना ही लिया।

मैं श्रीरंगापट्टनम् गया और फिर टीपू सुल्तान तथा हैदरअली की विदा को भूलकर या भुलाकर सीधा श्रीरंगापट्टनम् के मन्दिर में पहुंचा। इतनी ही देर तक सुब्रह्मण्यम की लेटी हुई महान देह के सामने खड़ा रहा। कभी सिर झुकता तो कभी एकटक देखता। पत्थर का देव सांस ले रहा था। पत्थर के नैन मेरी तरफ देख रहे थे। प्रणाम सुब्रह्मण्यम! प्रणाम प्रभु, खुदा, भगवान, वाहे गुरु या जो भी तुम अदृश्य शक्ति हो। काला था सुब्रह्मण्यम और काला ही था उसका आस-पास। सिर्फ उसके नेत्र लाल और सफेद चमकते हुए थे। सारे पवित्र स्थान भीतर से काले ही होने चाहिए। कालिख में मैं अन्तरात्मा का गहरा अहसास होता है। कालिख ही अरूप अनूप अभेद है और कोई नहीं। सफेद दूध या सफेद बर्फ भी नहीं। कालिख ही अनादि, अछेद, अगाध, उदार, अपार, अभूत, निर्दोष, अरंग, अभंग, अजात, अपात, दयालु, अनन्त सब कुछ है। हां, सभी धर्म स्थानों को भीतर से काला होना चाहिए बाहर से बेशक वह सोने या हीरों से जगमगाते रहें।

वैसे भी बाहर प्रकाश और भीतर से कालिख धर्म-स्थानों की सही रूपायत होगी। जी हां, बाहर से गोरे अंदर से काले।

सुब्रह्मण्यम के पैरों पर हाथ लगाने के बाद मेरा मन पहले से अधिक ठिकाने पर आ गया। शायद जहां मैंने खड़े होकर उसकी पूजा की थी वहां ही खड़ी होकर तुमने भी की थी। शायद जिस स्थान पर मैंने उनके चरणों को छुआ था तुमने भी बिल्कुल उसी स्थान पर अपने हाथ रखे होंगे। अब मेरे हाथों में शान्ति थी, पैरों में भी, अन्दर भी, बाहर भी। शांति थी, कालिख की कि अन्तर्ज्ञान की? अन्तर्ज्ञान की कि अज्ञानता और अचेतन की?

अगले दिन मैंने विश्वविद्यालय में भाषण दिया। हॉल भरा हुआ था

विषय था साहित्य में प्रेम का मूल्याकन। वाह-वाह कैसा भाषण था वह। मैं नही बोल रहा था मेरे, भीतर से कोई अदृश्य शक्ति बोले जा रही थी। सुब्रह्मण्यम ? परन्तु यह सुब्रह्मण्यम बड़ा गहरा सुब्रह्मण्यम था। एक हाथ शेक्सपीयर और कालिदास का स्वरूप और एक पैर मीग, दाते और टामसमान, दूसरे पैर गुरुओं और पीरों-पैगम्बरों (नाम गिनना पाप है) की सुगमता, और दूसरे हाथ साहित्य में प्रेम का अध्यात्मवाद और अलौकिकवाद। हाथों और पैरो के बीच मे साहित्य मे फूट रहे विलासवाद और भोगवाद को भी छेड़ा। फ्रैंक हेरस, कोकशास्त्र और हैनरी मिलर के टापिक।

श्रोतागण प्यार में रंग गये। उनके मुह पर और भीतर, बाहर प्रेम की बाढ आ गयी। वह प्रेम के सागर मे डुबकिया लगा रहे थे सर्वशक्तिमान उनका सहायक हो, यह मेरी प्रार्थना है, यही मेरे प्रेम का स्वरूप।

अपने ही भाषण को सुनते हुए मैं खुद भी अपनी प्रतिभा और सद्बुद्धि पर हैरान था—जैसे सद्बुद्धि विद्यार्थी की हो। मैंने अपने को कुछ खोया हुआ-सा पाया। एक पतली-सी बौद्धिक सूझ कहीं मे जागी।

बौद्धिक सूझ की पतली-सी लकीर के प्रकाश के सहारे मैं प्रेम के सागर मे डुबकिया खाता ही वहां से सीधा बम्बई जा पहुचा। और बम्बई में सीधा रामराज के दफ्तर। मेरे मित्र सम्पादक का मानो दिल ही फेल हो गया। जब उसने सुना :

निकालो मित्र टिकट और पेशगी, यार चलो पेरिस।

इक्कीस

प्रेम ताप है। इस ताप का नाप लेने का न कोई थर्मामीटर है न कोई और पैमाना है। यदि होता तो सिद्ध हो जाता कि इसका पारा सौ, दो सौ, तीन सौ डिग्री तक चढ़ सकता है। जहां तक मेरा संबंध है मुझे लगभग दो सौ डिग्री का प्रेमताप था। मैंने इस प्रकार अन्दाजा लगाया है : बम्बई से उड़ान करने के बाद औसतन एक डिग्री पारा रोज कम होता रहा और मैं लगभग छह महीनों में पूरी तरह स्वस्थ हो गया।

भारत से पेरिस मैं उल्टे-सीधे रास्ते से आया था। काबुल, तेहरान, बेरुत, एथेंस और पेरिस। काबुल मेरा एक जिगरी दोस्त है और उसके लिए मन सदा ही उदास रहता है। ईरान की पी० ई० एन० सभा के अध्यक्ष की तरफ से मुझे कुछ दिन तेहरान बिताने का भी बहुत दिनों से एक निमन्त्रण-पत्र आया था जो मैंने स्वीकार नहीं किया था। बेरुत गये भी वैसे काफी साल हो गये थे और इतने लम्बे अरसे में वहां आयी तब्दीलियों को देखने का मैं इच्छुक भी था। और एथेंस में यूनान का विदेश मन्त्री मेरा मेजबान था। यह पद संभालने से पूर्व वह दिल्ली में यूनान का राजदूत था और हमारी गहरी मित्रता थी। वह भाई कविता लिखने का बहाना किया करता था।

कार्यक्रम मैंने इस प्रकार का बना लिया लेकिन वह पूरी तरह से कार्यान्वित न हो सका। वह'''वह सदा मेरे साथ और मेरे आस-पास होती, न उसे छोड़ा जाता और न ही उसे गले ही लगाया जाता। जहां भी पहुंचा, सबसे पहले उसी का ख्याल कि काश, वह साथ में होती। मजा ही

मजा होता। और पहला अवसर मिलते ही मैं उसे पत्र लिखने बैठ जाता। (यह सभी पत्र अभी भी मेरे पास हैं डालने किस पते पर थे? इन्हे एक दिन छापूगा)। प्रसिद्ध लेखक समझकर काबुल, तेहरान और एथेंस के मेरे मित्र मुझे पागल न कहते। पेरिस आकर भी मैंने उसे काफी पत्र लिखे। उसके लिए पेरिस के बारह पोटरेट भी कलम-बद्ध और चित्रित किये जो *अब पुस्तक के आकार में छप चुके हैं।*

हां, बुखार की डिग्री वैसे अब कम हो रही थी और इन दिनों मेरे संपादक मित्र की ओर से मुझे एक मोटी और भारी-सी रजिस्ट्री पहुंची। क्या था यह? हवाई डाक द्वारा भेजने में उसे काफी खर्चा करना पड़ा होगा। कोई जरूरी वस्तु ही रही होगी फिर सोचा उसने कौन से अपने पैसे खर्च किये होंगे। रामराज अमीर दैनिक पत्र है। रजिस्ट्री खोली तो एक पुस्तक की पांडुलिपि थी। संपादक मित्र की रचना थी—यूरोप का आधुनिक दौर और उसका भारत पर प्रभाव। साथ मे एक पत्र भी था, मुस्कराता हुआ पत्र। शायद कह रहा हो—देखो कैसा तुम्हे उल्लू बनाया है। पांडुलिपि प्रेस में जाने के लिए तैयार थी और मेरे मित्र का निवेदन था कि मैं उसे आधुनिक हालातों के अनुकूल संशोधित करके शीघ्र से शीघ्र वापस भेज दूं। अच्छा तो यह बात है। इसीलिए डाइरेक्टरों के बोर्ड के सामने तुमने मेरी सिफारिश की थी। मैं भी कहूं कि कोई न कोई घुंडी तो जरूर है। बदमाश! हरामखोर!! चार सौ बीस!!! चलो कोई बात नहीं, आपका यार है, माफ किया। आधुनिक दौर में कौन चार सौ बीस, वैसा ही आठ सौ चालीस।

यह पांडुलिपि भगवान ने मुझे एक उपहार के रूप में भेजी। उपहार के तौर पर भी और खिलौने के तौर पर भी। क्योंकि सबसे बढ़िया निश्चित तौर पर खिलौने ही होते हैं या होने चाहिए। मैं उसे पढ़ने और फिर संशोधन करने में व्यस्त हो गया। अभी तक मैं नहीं समझ सका था कि मेरे इस संपादक मित्र में कुछ साहित्यिक अंश भी है और कुछ राजनीतिक सूझ भी। बिना यूरोप भ्रमण के उसने यूरोप के आधुनिक काल और विशेष तौर पर यहां के राजनीतिक वातावरण में उठ रहे इस उतार-चढ़ाव और आत्मविरोधी शक्तियों के प्रभाव का चित्रण किया है। वह खासा अच्छा।

अलावा इसके साहित्यिक भाषा में उसका वर्णन भी बुरा नहीं था। परन्तु फिर भी संशोधन की जरूरत थी। सब कुछ होते हुए बिना यूरोप-भ्रमण के यूरोप के बारे में लिखने में गलतियां रह जाना जरूरी ही है। और मेरा मित्र यह कमी जानता था। परन्तु योग्य संशोधन के लिए परिश्रम की जरूरत थी।

एक तो मैं भी चार साल बाद यूरोप आया था और दूसरा जैसा मैं कह चुका हूं मुझे लगभग दो सौ डिग्री तक का प्रेमताप था। इस बीमारी ने मुझे मानसिक तौर पर कमजोर कर दिया था (इसीलिए प्रेम बुखार शारीरिक बुखार से अधिक खतरनाक है। यह मनुष्य की मानसिक और आत्मिक, एकाग्रता को कमजोर कर देता है)। पिछले डेढ़-दो साल से मैंने अच्छी तरह समाचार पत्र भी नहीं पढ़े और बुद्धिजीवी तथा साहित्यिक स्तर के बारे में बेखबर था। पुस्तक का दयानतदारी से संशोधन करने के लिए मैं जो कुछ भी होऊं मरीजे-इश्क, मरीजे-वफा, मुनकर, काफिर या पक्का आस्तिक, आत्महितैषी या मगरूर मैं हर हालत में दयानतदार जरूर हूं। मेरे लिए खास-खास मसले समझने और जानने के लिए यूरोप-भ्रमण आवश्यक था। सो मैं घूमने के लिए तैयार हो गया—कहीं गाड़ी द्वारा, कहीं विमान द्वारा और कहीं मोटर द्वारा।

रगड़-रगड़ मेरी मोटर चले, दगड़-दगड़ दौड़े मेरी गाड़ी, फुर-फुर मेरा विमान उड़े और सर-सर चले मेरा मन और मेरी कलम। यह सारी रगड़, दगड़, फरर, और सरर में सर्वशक्तिमान का धन्यवाद कि मेरी प्यारी मंदरासन चकरा गई और वह गिरने लगी।

अपने मित्र की पुस्तक संशोधित करते हुए इच्छा हुई कि क्यों न खुद भी एक पुस्तक घसीट डालूं। एक अच्छे लेखक के लिए किसी की पुस्तक का संशोधन करना कड़ी साधना है। एक अच्छे लेखक के लिए किसी भी पुस्तक का संशोधन, पूजा या इबादत के समान है। पूजा और इबादत की तरह ही इसमें एकाग्रचित्त होना पड़ता है और उतने ही त्याग की जरूरत होती है। इस त्याग और एकाग्रचित्त का लाभ यह हुआ कि लेखक अपने आप पर नियंत्रण करना सीखता है और बौद्धिक दूरदर्शिता उसके भीतर प्रवेश करती है।

परन्तु बौद्धिक दूरदर्शिता की राम-कथा छेड़ने वाला मैं कौन पापी हूं। क्या बौद्धिक दूरदर्शिता थी मेरी? रामराज के लिए लिखता था जिस रामराज मे मेरा बिल्कुल विश्वास नहीं था। लेकिन ऐसे शब्दों को बैठाता कि रामराज के श्रद्धालु रामराज से अधिक मेरे श्रद्धालु बन गए।

याद आती है कुछ घटनाएं। एक बार एक अमरीकी डीगोल और फ्रांस के विरुद्ध लाल-पीला हुए फिर रहा था परन्तु मैंने उसे दलीलबाजी से सिद्ध कर दिया कि डीगोल और फ्रांस की उस समय की नीति दरअसल अमेरिका के पक्ष में जाती थी और इस बात को आम अमेरिकी समझते नही। वह अमेरिकी समझ गया। एक बार एक आस्तिक को तर्क-विज्ञान द्वारा नास्तिक बना दिया। यद्यपि स्वयं मैं तब आस्तिक था।

मतलब यह कि यही तो बौद्धिक दूरदर्शिता है। तर्क और दलील द्वारा सच को झूठ और झूठ को सच कर बताना। मारा-मूरा किसी को नही और ऐसे ही अरथी निकालकर राम-नाम सत्य है अलाप दिया। जन्मा कोई नही और लड्डू बांट आये हम?

निष्कपट प्यार, दूरदर्शिता और विश्वास में ऐसी चिंतनशील और बौद्धिक उड़ान कहा?

देखिये न, मेरे ही इस जगह-जगह से टूटने वाले उपन्यास की तरफ? कैसे थी मेरे गद्य की बनावट प्रथम अध्यायों (?) मे। और जब प्यार हुआ उस गोरी के साथ तो तब जा भटके उसकी याद मे या मेरी मूर्खता है या मेरा खालीपन। उसके प्यार के बाद रचना में कितनी निर्बलता है क्या यही वह मुखौटा है जिस मुखौटे की चर्चा करने वाला यह रचनाकार है और वही पत्रकार के साथ डबलबेड पर बारीकियो का उल्लेख करने वाला लेखक? नही भई, नही। यह लेखक नही, आशिक है, रचनाकार नही जानवर है। यह मोहब्बत मे गहरा है। इसको मनुष्य और फिर बन्दर बनने की आरजू है। मोहब्बत और प्यार मे सराबोर होकर लिखी सभ्य रचना निम्न और मध्य स्तर की होती है। वह पढ़ी, प्यारी, सतकारी बेशक जाये परन्तु सम्पूर्ण मानव विकास में वह किसी विशेष स्थान की हकदार नही। धत तेरे प्यार की।

और अब देखो जब बुखार कम हुआ है तो किस प्रकार के गद्य के पद . रहे हैं। ब्रह्माण्डनीय रग मेरे शब्दों मे किस प्रकार आते जा रहे हैं—

बाईस

मुझे वह दिन—दिन या रात ? दिन भी और रात भी याद है। आखिर दिन और रात के चौबीस घण्टे मिल कर ही दिन कहलाता है। जब मैं अच्छी तरह से स्वस्थ हो गया तो वैसा सेहतयाफ्ता दिन भी याद-गार मे वैसे ही जुड़ गया जैसे बीते हुए दिन। एक जून भोगी थी मैंने (प्यार एक जून ही तो है) और आज फिर मनुष्य बना था।

सर्दियो की ऋतु बेशक यौवन पर थी लेकिन पेरिस मे वह बहार जैसा ही दिन था। सूरज चमक रहा था और ऐसा लगता था कि ठण्ड अपने लिए एक दिन के लिए ठण्ड ढूढ़ने के लिए कही चली गई है। पेरिस की क्या बात है। चंचल स्त्री की तरह उसकी प्यारी-प्यारी ऋतुएं न इसके प्यार (?) पर विश्वास किया जा सकता है—हर सुबह इसकी नयी और हर रात इसकी अलग ही खूबसूरती और मिजाज होते है। मैं और मेरी एक फ्रांसीसी मित्र किसी विदेशी राष्ट्रपति के सम्मान मे दी गई पार्टी मे शामिल होने के लिए होटल दा वील मे से निकले। अभी बहुत रौनक थी लिहाजा हम पहले एक कहवाघर फिर दूसरे, फिर लग्जम बर्गबाग, फिर एक शरावघर और फिर मोमरात्र जा पहुचे। मोमरात्र मे ही एक छोटे से आशियाने लू कुआं मे रहता था। जब देर काफी हो गई तो उसने जाने की ख्वाहिश जाहिर की और सीधे से ही मेरे मुंह से निकल गया :

'चलिये आज की रात मेरे पास ही रह जाओ।'

वह हैरान ! मै भी ! वह हैरान कि आज कैसे मेरे दिल में उसके लिए प्रेम उमड़ा है। जरूर ही उमड़ा होगा, नही तो पहले क्यो नहीं कभी

मैंने उसे न्यौता दिया। मैं इसलिए हैरान कि आज मैं एकाएक भला-चंगा कैसे हो गया। शरीर, मन और बुद्धि में बीमारी का बटन जैसे 'ऑफ' स्थिति की तरफ चला गया हो।

मेरी सहेली मुस्करायी, मैं भी। भोली-भाली सुन्दर-सी—मैं कैसे अपनी बीमारी में उसकी सुन्दरता से विरक्त रहा। कभी उसे विदाई चुम्बन भी नहीं दिया था। हैरानी पर हैरानी यह कि वह मुझे अच्छी लगती थी और मैं उसे। हम दोनों के देखने के ढंग से प्रत्यक्ष रूप से परस्पर प्रशंसा की कहानी पढ़ी जा सकती थी।

यह मुस्करायी और उसने एक अलौकिक नखरे के साथ कहा :

'अच्छा जी !'

मैंने भी अनोखे अंदाज से उत्तर दिया :

'जी हां ! परन्तु एक शर्त पर।'

'क्या शर्त ? शर्तें पूरी करने में मैं घबराती नहीं।'

'लेकिन यह बड़ी आसान शर्त है !'

'बताओ !'

'अभी नहीं, फिर ! बड़ी आसान है कह जो दिया तुम्हें !'

'और अगर मैं पूरी न कर सकी तो आधी रात को कमरे से बाहर निकाल दोगे ?'

'मैं इतना निर्दयी नहीं और फिर इस सुन्दर शरीर (मैंने उसे आलिंगन में ले लिया) और फिर इस सुन्दर दिमाग (मैंने उसके माथे को चूमा। यह पेरिस में मेरा पहला चुम्बन था।) को कौन आलिंगन में लेकर चूम-चूमकर सम्भाल-सम्भाल और छुपा-छुपा कर नहीं रखेगा। कोई बात नहीं अगर तुम शर्त पूरी भी न कर सकी तो भी चलेगा।'

जब हम कपड़े उतार कर बिस्तर में घुसे तो उसने पूछा :

'शर्त तो आपने बतायी नहीं और बिस्तर तक हम पहुंच गये हैं। ऐसे ही रौब झाड़ते थे।'

'तुम सियानी हो शायद तुम उस शर्त की अवस्था तक पहुंचो ही ना।

'हूं—तो फिर तो मैं पहुंच कर दिखलाऊंगी।'

लगता है उस बेचारी ने उल्टा ही समझा। उस अवस्था तक पहुंचने

के बिना रह सकती हैं तो सिर्फ फ्रांसीसी स्त्रियां ही। परन्तु आज यह फ्रांसीसी युवती भी फेल हो गई। (क्योंकि अभी युवती थी?) जब आधी रात बीतने लगी और हमारे चुम्बन, हमारी काव्यमयी और विलासमयी सीमा तक पहुंच गए तो वह मेरे शरीर के साथ सिमटती हुई बोली :

'ओह...ओह...मैं तुम्हें प्यार करती हूं। हां...ओह...मैं तुम्हें प्यार करती हूं।'

परन्तु मैंने उसे उस समय गले से पकड़ कर कहा :

'बस यही शर्त थी। मैं यह शब्द नहीं सुनना चाहता।'

उसने विस्फारित नेत्रों से मेरी तरफ देखा पल ही पल के लिए जैसे वह पत्थर बन गई, मैं भी दुःखी हुआ और अपनी भूल का अहसास किया, कम-से-कम उस पल मुझे उसका सपना नहीं तोड़ना चाहिए था। मेरी क्षमा मांगती हुई नजरें पहचानकर वह मुस्करा पड़ी—कितनी सुन्दर और प्यारी मुस्कान थी वह—और उसने पूछा :

'क्यों?'

पहले तो सोचा कि मुंह मे आई बात कह दूं, उसे भी आनन्द लेने दूं और खुद भी आनन्द लूं। परन्तु फिर सोचा कि मौका भी यही है और सारी रात अपने पास है। अगर नाराज भी हो गई तो भी मना लूंगा और अलावा इसके अभी तो और भी बहुत-सी शर्तें आनी थीं (परन्तु यह बात तो दोनों तरफ से अच्छी लगती है) खैर मैंने बड़ी ही हलीमी से, बड़े ही प्यार से कहा (अगर नफरत का पुट था तो आवाज मे प्यार, क्योंकि किसी का दिल तो रखना ही होता है) :

'क्योंकि मुझे प्यार से नफरत है।'

वह हंस पड़ी। हंसती ही गई। लोट-पोट हो गई। मैं भी मुस्कराता रहा और उसने कहा :

'तुम बड़े प्यारे हो मेरे...'

'प्यारा हूं या नहीं परन्तु मेरे शब्द ध्यान से सुन लो। मुझे न तो प्रेम में ही इतबार है और न ही मैं प्यार करना चाहता हूं।'

'लेकिन तुम प्यार के बिना रह नहीं सकते। मैं तुम्हें बताती हूं।'

और फिर मेरी इस पेरिसी पत्रकार सहेली ने मेरी दिल्ली वाली

पत्रकार सहेली की तरह मेरी छाती के मिले-जुले बालों को स्पर्श किया। यह बाल सचमुच ही स्त्रियों को आकर्षित करते होंगे, लेकिन क्यों?

प्यार---प्यार के शाब्दिक रूप मे दो भावुक बिना शक एक दिमागी स्वांग है और नवीन पश्चिमी सभ्यता ने इस शब्द को हर प्रकार के लिंग-भोग क्रिया का अभिव्यजन बनाकर इसका शील बिल्कुल ही भंग कर दिया है।

और हम इस समय एक-दूसरे की बांहों में पड़े, एक-दूसरे के लिए कैसी सवेदना रखते हैं?

प्यार का आम शब्द ही इसकी आम व्याख्या करेगा। परन्तु यही तो गलत है। यही तो मेरी तकरार है। एक तरफ हम प्यार के लिंग-भोग की क्रिया जोड़ते है तो दूसरी तरफ उसे भगवान के साथ साक्षात्कार का साधन भी मानते हैं तो तुम्ही बताओ कि इस शब्द के स्वरूप के बदलने का समय है कि नही?

लिंग-भोग और प्रभु-मेल में शायद समानता हो, एक जैसा ही आनंद हो।

मैं हंसा परन्तु कहा।

यह हंसने का समय नही।

तुम्हारी सभ्यता मे तो फिर इस शब्द की स्थिति ऊची होनी चाहिए।

नही, यह दो अलग पहलू है। अच्छा यहा तो तुम भला एक-दूसरे को खुले तौर पर मिलते हो, अपना साथी स्वय चुनते हो और कह सकते हो कि मेल-मिलाप, भोग या विवाह का आधार प्यार है।. परन्तु हमारे यहा तो लड़के-लड़की ने पहली रात से पहले एक-दूसरे की शक्ल भी नहीं देखी होती। परन्तु फिर भी वह हीर-रांझा (मैंने उसे हीर-रांझे का प्रकरण समझाया) और रोमियो-ज्यूलियट बन कर रहते हैं। यह प्यार हुआ कि परिहास। क्या प्यार अगर साल भर बाद तुम लोग यहां तलाक ले लेते हो तो हमारे पुरुष का स्त्री से मन चुक गया। बात एक जैसी ही है। एक ही शब्द क्षण-भंगुर जजबात और शाश्वत संवेदना को किस प्रकार सही रूप मे रूपायित या चित्रित कर सकता है।

शायद प्यार साथ है।

तो फिर इसे प्यार की जगह साथ ही क्यों न कहा जाए। जितनी देर इकट्ठे रहो, रहो और फिर बिसर गए तो बिसर गए। परन्तु शायद जितनी देर बिसरने में लगती है वह प्यार है और वही प्यार का पैमाना। परन्तु अगर वह प्यार है तो उसके लिए कोई और शब्द ढूंढना पड़ेगा— फिर किसी को भूलना और याद रखना भी एक दिमागी फितूर है। मनोवैज्ञानिक खेल। कभी-कभी पल और कभी दिन और कभी साल लग जाते हैं। यह सब जीवित रहने के बहाने है अगर कोई और अच्छा बहाना मिल जाए तो पिछला भुला दिया जाता है और अगर नहीं मिलता तो उसकी याद बनी रहती है, महकती रहती है। यार की तस्वीर बहाना है, यार की कब्र पर पूजा एक बहाना।—और क्या फिर प्यार भी एक बहाना तो नहीं?—प्यार अधूरी जिन्दगी का ठहराव है और प्यार की याद···

वह सुनती भी गई और मुस्कराती भी। एकाएक उसने मेरे ओंठों पर ओंठ रखकर चूमने शुरू कर दिये—मुझसे भी न रहा गया। हम इस प्रकार दोनों को चूमते, चूसते रहे परन्तु मन मे फिर एक उबाल उठा और ओंठ अलग करते हुए मैंने कहा :

'पहले मेरी व्याख्या सुनो और···'

वह मेरी छाती के बालों को फैलाती हुई बोली :

'नहीं पहले 'प्यार' करेंगे—नहीं, प्यार नहीं, इस शब्द से आपको नफरत है—पहले भोग करेंगे। अब ठीक है···'

मुझसे रहा नहीं जा रहा था परन्तु फिर भी मैंने अपना दिल पक्का करते हुए कहा : 'नहीं, पहले मेरी कहानी। फिर मैं इस जजबात और इस शब्द से मुक्त होकर तुम्हें—नहीं, तुम्हारे साथ भोग करूंगा।'

और मैंने उसे अपनी बीमारी की कहानी सुनाई। उसने ध्यान से सुनी और कहने लगी :

'शायद मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्यार की बीमारी आवश्यक है।'

'चल-चल, आई हो बड़ा ज्ञान झाड़ने।'

'ज्ञान मैं झाड़ रही हूं कि तुम। तुम पर मेहरबानी कर के मैं सुनती

रही हूं क्योंकि मैं तुम्हें प्या'''क्योंकि तुम मुझे अच्छे लगते हो। तुम समझते हो कि तुम आज जानवर से इसान बने हो और मैं समझती हू सच्चाई इसके विपरीत है। हू'''

मैं मुस्कराया।

'देखो सुन्दरी, मैं अब पेरिस मे बस चार-पाच महीने और रहूंगा। पत्नी एक मैंने अपनी छोड़ी हुई है और एक यह जंजाल अब गले से उतारा है मुझ पर कोई उम्मीद न रखना'''

'बस एक उम्मीद रखती हूं कि तुम नामर्द न हो'''

हम एक-दूसरे को मिले हैं क्योंकि हमें एक-दूसरे की संगत और सोहवत अच्छी लगी। तुम्हारी मित्रता, तुम्हारे साथ बिताये क्षण, तुम्हारे साथ राजतनीक और आर्थिक मसलों पर हुई बहस और आज तुम्हारे साथ यह चुम्बन और आलिंगन'''

'बस'''?'

'और भी, और भी, और भी मुझे हमेशा याद रहेगा। दिल्ली की जलती हुई गर्मियों में जब तुम्हारी याद आयेगी'''

'बस! बस!! मेरे प्रियतम कही मुझे 'प्या'''और क्या कहूं'''जब तक इसकी जगह पर कोई और शब्द नही बताओगे तो इसी का इस्तेमाल करूंगी'''कही मुझे प्यार ही न करने लग पड़ना।'

'सुन्दर, गुणवती, बुद्धिमती और प्यारी लड़की को तो मैं सदा ही प्या' अच्छा जब तक कोई और शब्द नही मिलता'''यही इस्तेमाल करूंगा'''मैंने सदा ही प्यार किया है और करता रहूंगा। मैं'''

उसने फिर मेरे ओठों पर हाथ रखा और फिर अपने ओंठ। और यह कहते वह मुझसे लिपट गयी।

'तुम सचमुच ही बड़े प्यारे हो, मेरे प्यारे। तुम नहीं जानते, मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूं'''प्यार करती हूं'''

(क्या तुम समझती थीं कि तुम्हें प्यार करने के लिए हूं। मैंने प्यार से नफरत करने का स्वांग रचा था?)

तेईस

स्वस्थ तो मैं हो गया था लेकिन फिर भी कभी मन के किसी कोने में किसी समय भय का पुट दिखाई देता। मानसिक संतुलन भी मैं कभी-कभी खो बैठता, सोचता यहां तो ठीक हूं, अच्छी तरह महसूस करता हूं परन्तु उसे देखते ही कहीं पुनः जी मिचलाने न लग जाये। कहीं फिर वह बला न चिपट जाये और मैं निर्बल हो जाऊं।

जब पेरिस से मैं स्वदेश लौटने को हुआ तो रोम के हवाई अड्डे पर इस भय ने पल ही पल के लिए मुझे भयभीत कर दिया। लिहाजा उसी समय मैंने अपना कार्यक्रम बदल लिया और सीधा वापस आने की जगह एक हफ्ता काहिरा रुक गया। (कैसी विचित्र स्थिति है कि संसार में जहां भी रुकना चाहो वहां ही कोई न कोई परिचित या मित्र मिल जाता है।) सोचा प्यार की अरथी सिर पर उठाये लिये जा रहा हूं। यह पक्का करलूं कि कहीं मंजिल पर पहुंचते-पहुंचते मुर्दा कफन फाड़कर बोलने न लग जाये।

काहिरा में भारतीय राजदूत के यहां एक मिस्री प्रकाशक मिल गया और बातचीत के दौरान उसने मेरा एक उपन्यास अरबी में अनुवाद करने के लिए मांगा (ऐसी घटनाएं भी मुझे होनीवाद और भावीवाद बनने के लिए मजबूर करती हैं और फिर होनीवादी से आदर्शवादी और आदर्शवादी से ईश्वरवादी···। सहजवाद, अस्तित्ववाद और बुद्धिवाद की मंजिल पर पहुंचना और भी कठिन और वहां पहुंचकर टिक सकना उससे भी कठिन है। काहिरा में उतरा था अपना मन रवां करने के लिए और वहां

उतरने से पहले मेरा रवां हो भी गया···ऐसे भय का अंदाज-सा हुआ जो हवा के एक झोंके के साथ उड़ गया। अरबी में अभी तक मेरे किसी भी उपन्यास का अनुवाद नहीं हुआ था और इच्छा मेरी जरूर थी कि इस भाषा में भी मेरा कोई उपन्यास छपे। ज्यादा इसलिए कि मेरी एक अति सुन्दर सहेली को उरजोश अरबी संगीत अति रोचक लगता था। (वाह ! चाह का कारण और फिर कारण तथा कार्य का रिश्ता !)

एक हफ्ता काहिर रहने के बाद मैं दिल्ली हवाई अड्डे पर उतरा और डिफेंस कालोनी अपने घर पहुंचा और जानते हैं, सबसे पहले किसके दर्शन हुए ? उसी काले मुखड़े के। वाह ! कैसा मुखड़ा है, कैसा मुखौटा है। ऐसे वेसिर मुंह को मुंह नहीं मुखौटा ही कहना चाहिए।

मुस्करा कर मैंने फिर उस समय प्यार की अरथी एक जगह टिका दी और आज इस रचना के द्वारा इस की अंत्येष्टि करने को चला हूं।

सो आज इस भंजन उपन्यास द्वारा मैंने प्यार की अरथी निकाली है। इस अरथी को मैं मोहब्बत की विश्व अरथी का चिह्न बनाना चाहता हूं। इसलिए आओ, सज्जनो मित्रो, राम-नाम सत्य का उच्चारण करते हुए इसके पीछे-पीछे आओ। आपका किसी प्रकार का विरोध लाभदायक नहीं होगा। वह समय लद गया जब मेरे जैसे बुद्धिजीवी और वैज्ञानिक बुतशिकन की आप रचनाएं जला सकते थे या उसे सूली पर चढ़ा सकते थे या उसे जहर पीने या आत्महत्या करने पर मजबूर कर सकते थे। आज हमारा पक्ष और हमारी पीठ शक्तिशाली है और हमें अनेक गौरव और बलवान ताकतों का सहयोग प्राप्त है।

इस अरथी के जलूस में सम्मिलित होना एक दिन आदर और सम्मान का प्रतीक माना जायेगा। इससे बढ़कर आपको और कैसे शब्दों और सपनों से आकर्षित और मोहित करूं। हर हालत में आपका इससे किनारा करना आपकी अज्ञानता का प्रमाण होगा और हम बुद्धिजीवियों का···सिवाय उन्हें सुधारने और समझाने के···अज्ञानियों के साथ क्या सरोकार !

